# महानुवादक रत्नभद्र

## लोछेन रिनछेन जङ्-पो

विद्या सागर नेगी

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

# महानुवादक रत्नभद्र

## (लोछेन रिनछेन ज़ाङ्-पो)

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

क्लिफ-एण्ड-एस्टेट, शिमला-171001

# महानुवादक रत्नभद्र

## (लोछेन रिनछेन ज़ङ्-पो)

विद्यासागर नेगी

ISBN : 978-81-86755-72-1

प्रकाशक : सचिव
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
शिमला, हि. प्र.-171001



सम्पादन : गिरिजा शर्मा

मुख पृष्ठ : महानुवादक रत्नभद्र का रेखांकन

मूल्य : ₹ 100/-

कम्पोज़िंग : कृष्णा

मुद्रक : भारत ऑफसेट वर्क्स
3550, जाटवाड़ा स्ट्रीट, दरयागंज
नई दिल्ली - 110 002

---

**Mahanuwadak Ratnabhadra by Vidya Sagar Negi**

Published by : Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture & Languages, Shimla-171001

Edition : 2012

**Price:** ₹ 100/-

# प्राक्कथन

## डॉ. तुलसी रमण
### सचिव, हिमाचल अकादमी

हिमालय में पूर्व से पश्चिम तक लगभग दस हजार फुट की ऊँचाई के आसपास जीवित-जागृत बौद्ध परम्परा है। तिब्बत में विकसित हुई यह परम्परा मूल रूप से भारतीय है। हमारे समय में स्कूली पाठ्यक्रम में कुछ इस तरह के पाठ हुआ करते थे—तिब्बत बौद्ध बना, चीन बौद्ध बना या फिर श्रीलंका बौद्ध बना आदि। सातवीं सदी में सिंधु और ब्रह्मपुत्र के प्रवाह के प्रतिकूल यह परम्परा तिब्बत पहुँची। तभी तिब्बत पहले पहल बौद्ध बना। तिब्बत में तब धार्मिक आस्थावान राजा स्रोङ् चन गम्पो का शासन था। उसने अपने युवा आमात्य थोन्मी सम्भोट को संस्कृत भाषा तथा बौद्ध विद्या के अध्ययन हेतु भारत भेजा। उसी सम्भोट ने तिब्बत लौटकर राजाश्रय में संस्कृत के अनुकूल भोटी लिपि का निर्माण करके भोटी यानी तिब्बती भाषा का आधार तैयार किया और तभी से भारत के बौद्ध धर्म-दर्शन और विविध प्राच्य ज्ञान की निधि संस्कृत और पालि से अनूदित होकर भोटी की गोद में सुरक्षित है।

तिब्बत में सातवीं सदी से ही संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद का सदियों लम्बा सिलसिला चला, जिससे हज़ारों ग्रंथों का अनुवाद हुआ और विहारों के ग्रंथागार भर दिये गए। यह अनुवाद दो विद्वानों द्वारा मिलकर किया जाता था—एक भारतीय आचार्य और दूसरा संस्कृतज्ञ भोट विद्वान। अनुवाद का परीक्षण राजा के संरक्षण में गठित विद्वानों की समिति करती थी। इस तरह तिब्बत में अनुवाद ने प्रमुख विद्या का स्थान ले लिया। वहाँ अनुवादक को लोक-चक्षु के अर्थ में 'लोचावा' कहा गया। तिब्बती ज्ञान परम्परा में 'लोचावा' आज भी सर्वोपरि प्रतिष्ठित हैं और लोछेन यानी महानुवादक इनमें भी प्रमुख हैं।

प्रख्यात बौद्ध विद्वान और हिमालय के चर्चित यात्रा लेखक प्रो. कृष्णनाथ कहते हैं कि 'हिमालय महज़ चट्टान और बर्फ़ का नहीं, इसकी अपनी आत्मा है। यह राज्यों की सीमा में नहीं बंधता। हिमालय को राज्यों ने नहीं बनाया, इसकी अपनी सत्ता है।' वास्तव में हिमालय की यह सत्ता भौगोलिक उतुंगता मात्र की नहीं है; इसमें सांस्कृतिक अवदान शामिल है। इसी संदर्भ में मूर्धन्य साहित्यकार निर्मल वर्मा ने भी कहा है कि—'हिमालय का समूचा पर्वतीय अँचल—लद्दाख, कश्मीर, तिब्बत, नेपाल एक तरह से उसी समान सांस्कृतिक सम्पदा की धरोहर संभाले है, जो भारत की मनीषा से इस तरह

अंतर्गुम्फित है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना असंभव लगती है।'

जिस सांस्कृतिक सम्पदा का यहाँ उल्लेख हुआ है, उसकी संरक्षक भोटी भाषा है और हिमालयी प्रदेशों के वे गोन्पा हैं, जो महज पूजा स्थल नहीं हैं, बल्कि कला-संस्कृति के पारम्परिक केन्द्र और बहुआयामी शैक्षिक संस्थान हैं। दरअसल भोटी भाषा, गोन्पा और लामा समूचे हिमालय को एक सूत्र में जोड़ते हैं। ये हिमालय के आंतरिक अतीत को बचाये हुए हैं। भोटी भाषा में ही हिमालय की अंतर्ध्वनि है। समूचे हिमालय क्षेत्र पर भोटी भाषा और बौद्ध संस्कृति का जो छाता तना है, उसमें भारतीय प्राच्य ज्ञान और मनीषा की समग्र प्रतिध्वनि भी है; जो हमारे मुख से निकल कर फिर हम तक लौटती है।

तिब्बत की इस महान और दृढ़ सांस्कृतिक परम्परा में रत्नभद्र, जिनका भोटी नाम रिनछेन जङ्-पो है, दसवीं सदी के लोठेन यानी महानुवादक हैं। बौद्ध धर्म और संस्कृति में इनका ऐतिहासिक योगदान है। भोटी को अनुवाद समृद्ध भाषा बनाने में इनकी प्रमुख भूमिका रही है; ऐसी भाषा जो विभिन्न संस्कृतियों और समाजों के बीच सेतु का काम करती है। भारत और तिब्बत के बीच स्वयं रत्नभद्र एक महान सांस्कृतिक सेतु साबित होते हैं। गुगे के राजा के प्रश्रय में उन्होंने इस दिशा में कई ऐसे काम किए, जो एक जीवन में आश्चर्यप्रद प्रतीत होते हैं। उन्होंने भारत में आकर कश्मीर तथा पूर्वी भारत के विभिन्न विहारों में 75 गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करके लगभग 160 ग्रंथों का संस्कृत से भोटी में अनुवाद किया और पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में 108 बौद्ध विहारों की स्थापना की। तिब्बत के अतिरिक्त भारत के लद्दाख, लाहुल-स्पीति तथा किन्नौर में भी उनके बनवाये अनेक विहार हैं, जिनमें हिमालय की अजंता कहलाने वाला ताबो छोस-खोर प्रमुख है।

महानुवादक रत्नभद्र के जीवन और कृतित्व को लेकर यह पुस्तक हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के विद्या व्यसनी भोटी प्राध्यापक विद्यासागर नेगी द्वारा लिखित है। इससे पूर्व रत्नभद्र के पट-शिष्य श्रीज्ञान ने उनकी तीन जीवनियाँ भोटी में लिखी हैं। उनमें से 'संक्षिप्त' तथा 'मध्यम' दो जीवनियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनके अनुवाद इस पुस्तक में सम्मिलित हैं। तीसरी 'बृहद्' जीवनी अब उपलब्ध नहीं है। किन्नौर निवासी लेखक ने पूर्व प्रकाशित जीवनियों के आधार पर लिखित इस पुस्तक में रत्नभद्र को लेकर किन्नौर में प्रचलित लोक मान्यताओं को भी यथातथ्य जोड़ा है। आशा है अकादमी द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक का यह संशोधित संस्करण हिमालयी सांस्कृतिक धरोहर के अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

# अनुक्रम

# महानुवादक रत्नभद्र
## (लोछेन रिनछेन ज़ङ्-पो)

भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख अंग बौद्ध संस्कृति है। इसके प्रचार- प्रसार में अनुवादकों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। यह अनुवादकों के अथक प्रयास का ही फल है कि आज दुनिया के सबसे पहले स्थापित नालन्दा, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी आदि विश्वविद्यालयों में जिसका अध्ययन-अध्यापन करवाया जाता था, संस्कृत का वह सम्पूर्ण बौद्ध वाङ्मय भोटी, चीनी, जापानी आदि भाषाओं में अनूदित रूप में सुरक्षित मिलता है, जबकि इन ग्रंथों के संस्कृत मूल प्रायः लुप्त हो चुके हैं। भोट भाषा में भाषायी अनुवादकों को लोच़ावा कहा जाता है। लोच़ावा संस्कृत शब्द 'लोकचक्षु:' का भोटी रूप है। भारत के पड़ोसी भोट देश में अनेक महान 'लोच़ावा' हुए हैं। सबसे पहले 'लोच़ावा' सातवीं शताब्दी के थोन्मी संभोट हुए हैं, जो तिब्बत के सम्राट स्रोङ-च़न-गम्पो के मंत्री थे। उसी क्रम में दसवीं[1] शताब्दी यानी 958 ई. में वर्तमान पश्चिमी तिब्बत के गुगे राज्य के क्युवङ रदनी[2] नामक स्थान में पिता वन-छेन-पो-जोन-नु-वङ-छुग (महाभदन्त ईश्वर कुमार) और माता कुन-ज़ङ-शेस-रब-तन-मा (समन्त भद्रा प्रज्ञा शासनी) के यहाँ एक अत्यन्त ही उज्ज्वल मानव नक्षत्र का उदय हुआ था, जिसने कालान्तर में अपनी प्रज्ञा रूपी आलोक से सम्पूर्ण हिमालयी बौद्ध जगत को आलोकित किया। बालक का जन्म का नाम रिनछेन वङछुग (रत्नेश्वर) था। ये अपने चार भाई-बहिनों में दूसरे स्थान पर थे। इनके बड़े भाई का नाम शेस-रब-वङ-छुग (प्रज्ञेश्वर), छोटे भाई का नाम योनतन वङ-छुग (गुणेश्वर) और इनकी छोटी बहिन का नाम शेस-रब-छोमो (प्रज्ञासरिता) था।[3] ये श्यामवर्ण के खगमुखी थे। बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न थे। अपने पूर्व जन्म के संस्कारवश मात्र दो वर्ष की आयु में ही ये कभी-कभी देवनागरी के वर्णों का उच्चारण करते थे। उनकी प्रतिभा को देखकर इनके पिता ने इन्हें पीतवस्त्र पहनाकर उपासक बनाया। 13 वर्ष की आयु[4] में इन्होंने अपने गुरु लेगस-पा-ज़ङ-पो (सुभद्र[5]) से प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या के समय गुरु द्वारा इनका नाम रिनछेन-ज़ङ्-पो (रत्नभद्र) रखा गया।

### लोचावा बनने के पूर्व निमित्त

जब रत्नभद्र सत्रह वर्ष के हुए तो इनके जीवन में एक विशेष घटना घटी, जिससे कश्मीर आदि विभिन्न भारतीय स्थानों में जाकर विद्या ग्रहण करने का इनका मार्ग प्रशस्त हो गया। इस घटना के अनुसार एक दिन इनकी माता ने 'उड्डियान'[6] से आया हूँ– ऐसा बतानेवाले एक पंडित को अपने घर पर आमन्त्रित कर भोजन करवाया। पंडित जी भोजन करके चले गये, किन्तु जिस स्थान पर वे भोजन के लिए बैठे थे, वहाँ उनकी एक छोटी-सी पुस्तक छूट गई थी। रत्नभद्र की निगाह उस पुस्तक पर पड़ी। उन्होंने पुस्तक उठाकर देखी, लेकिन पुस्तक भारतीय भाषा में थी अतः वे उसे पढ़ नहीं पाये। भारतीय भाषा का ज्ञान नहीं होने का उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे अपने गाँव से नीचे की ओर उतरे और वहाँ एक पेड़ की शीतल छाया में लेट गये। कुछ देर बाद उन्हें नींद आ गई। तभी सपने में उन्हें मुकुट, हार, कंगन आदि दिव्य अलंकारों से अलंकृत एक लोहितवर्णा डाकिनी दिखाई दी, जो अपने दायें हाथ में डमरू बजा रही थी और बायें हाथ में मुट्ठीभर फूल की डाली पकड़े हुए थी। उसने इनके पास आकर निम्न प्रकार से भविष्यवाणी की–

"मकड़ी के (अपनी) तार से अपने ही शरीर को आबद्धकर देने की भांति (जो व्यक्ति अपने) देश के प्रति आसक्ति (रखता है, वह) मार के जाल में (स्वतः) बंध जाता है। (जो) कोई व्यक्ति सुगति तथा मुक्ति की चाह रखता है, (उसे) उत्तरी दिशा में स्थित कश्मीर जाकर फिर भारत के पूर्व से पश्चिम (सभी जगहों को) जल की भांति (अपने चरणों से) स्पर्शकर सद्धर्म (रूपी) समुद्र को भोट भाषा में अनूदित करे, तो सुखद होगा'[7]—यह कहकर वह अन्तर्धान हो गई।

नींद से जब ये जागे तो उनका शरीर पसीने से भीगा हुआ था। वे अपने घर लौट आए। घर पहुँचकर सोचने लगे—"मेरे लिए डाकिनी ने भविष्यवाणी की है। अब कश्मीर[8] तथा (पूर्वी) भारत न जाया जाये तो धर्म और जीवन दोनों में विघ्न पड़नेवाला है। यदि चला भी जाऊँ तो कश्मीर के स्थानों का ठीक से परिचय न होने के कारण माता-पिता को मानसिक पीड़ा होती रहेगी। इससे मुझमें कुसंस्कार का संचय होगा।" ऐसा सोचते-सोचते उनका मन व्याकुल हो गया। मानसिक खिन्नता के कारण काले पड़े उनके चेहरे को देखकर जब उनकी माँ ने जानना चाहा तो उन्होंने डाकिनी की उक्त भविष्यवाणी विस्तार से माँ को सुना दी।

### अध्ययन के लिए कश्मीर यात्रा

डाकिनी की भविष्यवाणी को सुनने के बाद उनके माता-पिता ने अपने बन्धु-बान्धवों और अन्य रिश्तेदारों के साथ रत्नभद्र को विद्या अध्ययन के लिए कश्मीर तथा पूर्वी भारत भेजने या न भेजने के विषय में विचार-विमर्श किया। कश्मीर उन दिनों बौद्ध धर्म, दर्शन और तंत्र विद्या का गढ़ था, इसलिए सबने यह निर्णय लिया कि उन्हें कश्मीर भेजा जाए। इस प्रकार वे अठारह वर्ष की आयु में टशि छेमो (मंगल शेखर)

नामक अपने एक उपासक और कुल्लू[9] के स्थानों का परिचय रखनेवाले एक व्यक्ति के साथ कश्मीर के लिए चल पड़े। कुल्लू वाला साथी कुछ दिन बाद पैदल यात्रा से तंग आकर आधे रास्ते में ही रुक गया।

कश्मीर जाते समय मार्ग में रत्नभद्र को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। स्थानीय भाषा की अज्ञानता के कारण लोगों से बातचीत करने में जहाँ उन्हें दिक्कत हुई, वहीं धार्मिक लोगों से द्वेष रखनेवाली एक यक्षिणी द्वारा मार्ग में बाधा भी उत्पन्न की गई। उनके साथी उपासक टशिछेमो के अकस्मात् रुग्ण हो जाने से उन्हें बहुत परेशानी हुई। राह चलते लुटेरों, डाकुओं तथा हिंसक जंगली जानवरों से सदैव भय बना रहता था। अपने घर से पाथेय के रूप में, जो कुछ वे साथ लेकर चले थे, वह मार्ग में ही समाप्त हो चुका था। अतः मार्ग में भिक्षाटन करते चलते रहे। कई बार उन्हें अपने साथी के साथ भूखा भी रहना पड़ा। इन सारी परेशानियों के बावजूद वे आगे बढ़ते गये। जब कभी वे निश्चित दिशा सूझ न पाने के कारण द्विविधा में होते तो उनकी हितैषी डाकिनी, जिसने उन्हें कश्मीर में विद्याध्ययन के लिए जाने की प्रेरणा दी थी, सपने में आकर उन्हें दिशा-निर्देश दे जाती थी।[10]

**पूर्वी भारत में विद्याध्ययन यात्रा**

सारी परेशानियों का सामना करते हुए अन्त में रत्नभद्र अपने साथी उपासक के साथ कश्मीर की सीमा में पहुँचे। वहाँ उन्होंने महीना भर एक गाँव में रहकर स्थानीय बोलचाल की भाषा सीखी। उसमें दक्षता प्राप्त करने के बाद वे पंच विद्यास्थानों में विशिष्टता प्राप्त महान् विद्वान् गुणमित्र के यहाँ पहुँचे। वहाँ सात महीने तक द्विभाषिये यानि अनुवादक का अभ्यास किया। साथ ही शब्द विद्या तथा प्रमाण विद्या में भी प्रवीणता हासिल की। कश्मीर के उपाध्याय धर्मशान्ति से उपसम्पदा यानि भिक्षु संवर ग्रहण किया। कश्मीर में उन्हें एक योगी से चिन्तामणि नामक जंघाचारिक[11] सिद्धि की प्राप्ति भी हो गई। इस विशिष्ट सिद्धि के बाद ज्ञानार्जन के लिए वे इच्छानुसार कहीं भी द्रुतगति से पहुँच जाते थे। इसके बाद उन्होंने महापंडित श्रद्धाकर वर्मा, पंडित कमल गुप्त, सिद्ध शिरोमणि आचार्य नाडपाद[12] से ज्ञानार्जन किया।

**विद्याध्ययन के लिए पूर्वी भारत आगमन**

कश्मीर से रत्नभद्र विद्याध्ययन के लिए पूर्वी भारत पहुँचे। वहाँ उन्होंने जिनमित्रपाद, ज्ञान, शीलेन्द्र बोधि आदि अनेक उपाध्यायों तथा महापंडितों से बौद्ध धर्म दर्शन तथा तंत्र विद्या का अध्ययन किया। साथ ही संस्कृत ग्रंथों का भोट भाषा में अनुवाद भी किया। संक्षेप में उन्होंने पचहत्तर उपाध्यायों से ज्ञान प्राप्त किया। पूर्वी भारत में वे भदन्त ज्ञानसेन के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

**कश्मीर से स्वदेश की ओर**

पूर्वी भारत से रत्नभद्र कश्मीर लौटे। कश्मीर में अपने गुरु श्रद्धाकर वर्मा से अपनी पुस्तकें, जिन्हें वे पूर्वी भारत की ओर जाने से पहले रख गये थे, वापस लेकर

स्वदेश लौट आए। कश्मीर तथा पूर्वी भारत में विद्याध्ययन करते उन्हें तब तक दस वर्ष हो गये थे। इस बार जंघाचारिक सिद्धि के द्वारा वे छह दिन में ही कश्मीर से अपने गाँव क्युवङ-रदनी पहुँचे। गाँव पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पिता एक वर्ष पहले स्वर्ग सिधार चुके थे। स्वदेश लौटने पर उन्हें गुगे के धर्मराज महागुरु ल्ह-ल्दे ने अपना राजपुरोहित तथा वज्राचार्य नियुक्त किया और ङरि[13] प्रान्त का पु-रङस नामक स्थान उन्हें भेंटस्वरूप प्रदान किया। उन्होंने पु-रङस के ज्येर से लेकर होपुलङ[14] तक एक सौ आठ विहारों का निर्माण करना भी स्वीकार किया।

### दूसरी बार कश्मीर यात्रा

गुगे राज्य के धर्मराज ल्ह-ब्ल-म-ये-शेस-ओद गुरुदेव (ज्ञानप्रभ) के कहने पर रत्नभद्र पुनः कश्मीर गये। गुरुदेव ज्ञानप्रभ ने इस बार सभी मार्ग व्यय के साथ पन्द्रह प्रबुद्ध बालकों को भी उनके साथ कश्मीर में विद्याध्ययन के लिए भेजा। कश्मीर में अधिक गर्मी होने के कारण केवल उनमें से तीन विद्यार्थी ही बचे। शेष सभी की मृत्यु हो गई। तीन विद्यार्थी जो बचे वे बाद में अच्छे अनुवादक हुए। गुरुदेव ज्ञानप्रभ के आदेशानुसार इस बार जब वे वापिस स्वदेश लौटे तो कश्मीर से 32 कुशल शिल्पकारों को भी अपने साथ ले आए।

## विभिन्न प्रदेशों में बौद्ध विहारों का निर्माण

महानुवादक रत्नभद्र ने गुगे राज्य के धर्मराज के आग्रह पर एक सौ आठ बौद्ध विहारों का निर्माण करना स्वीकार किया था। गुगे राज्य के खिरङवासी रत्नभद्र के एक शिष्य द्वारा रचित रत्नभद्र की मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनियों में उन जगहों के नाम दिये हैं, जहाँ उन्होंने विहारों की स्थापना की थी। इनमें कुछ स्थान भारतीय क्षेत्र में तो कुछ पश्चिमी तिब्बत के गुगे तथा पुरङस में पड़ते हैं। पुरङस तथा गुगे के क्षेत्रों में पड़नेवाली जगहों में थोलिङ, ज्येर-पा, गोखर, बोरि, यङकुर, तियक, छुदमेद, ञेवङ, ग्युलङ, चोगरो, रिठि, डिलछुङ आदि आते हैं। लद्दाख[15], लाहुल स्पीति और किन्नौर भारतीय क्षेत्रों में हैं। लद्दाख में अरमा[16], लाहुल में जोलिङ[17], स्पीति में लालुङ[18], ताबो[19], लरि[20], किन्नौर में नाको[21], पूह[22], रोपा[23], सुन्नम[24], कानम, ङङत्रङ[25], च्चारङ[26], शङस[27], मोने[28] होपुलङ में रत्नभद्र ने बौद्ध विहारों की स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त किन्नौर में चांगो[29], चुलिङ[30], रिब्बा[31] तथा छितकुल[32] के बौद्ध विहार भी रत्नभद्र द्वारा निर्मित हैं। किन्नौर में कानम, शङस (ठंगी) होपुलङ (कल्पा) गाँव के बौद्ध विहार भी रत्नभद्र द्वारा निर्मित थे, जो अब मूलरूप में विद्यमान नहीं हैं। इनके स्थान पर अब हाल के वर्षों में निर्मित बौद्ध विहार देखने को मिलते हैं। छितकुल तथा मोने (कामरू) के विहार भी बहुत पहले ग्लेशियर की चपेट में आ जाने के कारण समूल नष्ट हो गए थे। अब इन दोनों गाँवों में बाद के वर्षों में निर्मित बौद्ध विहार देखे जा सकते हैं। यद्यपि ये बौद्ध विहार प्राचीन बौद्ध विहारों के स्थानों पर नहीं बने हैं तथापि

इन बौद्ध विहारों में विद्यमान बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की धातु की कुछ प्रतिमाएँ मूल विहारों की भी हैं। इनके अतिरिक्त जिन गाँवों के नाम रत्नभद्र की जीवनियों में उल्लिखित हैं, वे सारे पश्चिमी तिब्बत में पड़ते हैं। रत्नभद्र ने इन बौद्ध विहारों में विद्यमान प्रतिमाओं, मण्डलों तथा भित्तिचित्रों का निर्माण कश्मीरी शिल्पकारों से करवाया था जिन्हें वे अपने साथ लाए थे। साथ ही उन्होंने स्थानीय शिल्पकारों की भी सहायता ली थी।

**स्तूपों की स्थापना**

महानुवादक रत्नभद्र ने बौद्ध विहारों के साथ-साथ विभिन्न प्रदेशों में असंख्य स्तूपों की भी स्थापना की थी। उनकी जीवनियों में यह उल्लेख नहीं हुआ है कि उन्होंने कहाँ-कहाँ पर स्तूपों का निर्माण किया। पहली बार कश्मीर जाते समय एक वृद्धा ने उन्हें भिक्षा के रूप में चावल दिए। कृतज्ञता स्वरूप रत्नभद्र ने उसके पुण्यवर्धन के लिए वृद्धा के कुछ केश लिए। उन्हें जलाकर उसकी भस्म को मिट्टी में मिलाकर उसके नाम से कश्मीर में एक सौ आठ स्तूपों के निर्माण करने का ज़िक्र उनकी मध्यम तथा संक्षिप्त दोनों जीवनियों में आया है। ऐसा लगता है ये स्तूप लघु आकार के थे, जिन्हें छा-छा कहते हैं। किन्नौर तथा स्पीति के कुछ गाँवों में उनके द्वारा निर्मित स्तूप आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। किन्नौर के पंगी गाँव में रत्नभद्र द्वारा निर्मित एक स्तूप विद्यमान है, जिसे स्थानीय लोग किन्नौर में प्रचलित लोककथा के आधार पर युना-दोनडुब द्वारा निर्मित मानते हैं। किन्नौर के रोपा, लाबरङ, रारङ, जंगी, नाको, हङमद (निचला हांगो), स्पीति के ताबो आदि गाँवों में भी रत्नभद्र द्वारा निर्मित स्तूप जीर्ण-शीर्ण अवस्था में देखने को मिलते हैं। चिने (कल्पा) के तलेवरङ स्थान पर भी सन् 1990 तक रत्नभद्र द्वारा निर्मित एक स्तूप था। जीर्ण हो जाने के कारण अब उस स्थान पर स्थानीय लोगों ने नए स्तूप का निर्माण किया है। किन्नौर में रत्नभद्र द्वारा निर्मित सबसे विशाल स्तूप हङमद यानि निचला हांगो गाँव का है। स्थानीय लोग मानते हैं कि इस स्तूप का निर्माण किसी आध्यात्मिक गुरु तथा स्थानीय देवता ने मिलकर किया है। इनके अतिरिक्त भी पहले किन्नौर तथा स्पीति में रत्नभद्र द्वारा निर्मित कई स्तूप थे, जो अब काल-कवलित हो चुके हैं। कुछेक रत्नभद्र द्वारा निर्मित स्तूप इन क्षेत्रों में इस समय देखने को मिलते हैं, परन्तु उनकी स्थिति भी शोचनीय है।

## रत्नभद्र के विहारों का ऐतिहासिक महत्त्व

महानुवादक रत्नभद्र के बहुत सारे विहार अब काल-कवलित हो चुके हैं। जो विहार इस समय मूलरूप में विद्यमान हैं, उनमें से भी अधिकांश अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं। इतने वर्षों से काल के थपेड़ों से बचे कुछ विहार हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इन बौद्ध विहारों के भीतर विद्यमान बुद्धबोधिसत्त्वों तथा बौद्ध देवी-देवताओं की प्रतिमाओं, भित्तिचित्रों, स्तूपों से जहाँ तत्कालीन बौद्ध मूर्तिकला,

भित्तिचित्रकला के गौरवपूर्ण इतिहास को समझा जा सकता है, वहीं बौद्ध धर्म, दर्शन तथा तंत्र की पाण्डुलिपियों से भोट भाषा तथा भोट लिपि के क्रमिक विकास की यात्रा को भी समझा जा सकता है। इन विहारों तथा स्तूपों से तत्कालीन स्थापत्य कला को समझने में भी विशेष सहायता मिलती है। इस तरह ये बौद्ध विहार तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक इतिहास और व्यवस्था को जानने के परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि ताबो का विहार 'हिमालय की अजन्ता' के रूप में वर्षों से दुनिया के विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट करता आ रहा है।

**विहार निर्माण सम्बंधी लोकभाषिक**

बौद्ध विहारों के निर्माण के सम्बंध में किन्नौर आदि हिमालयी क्षेत्रों में सर्वत्र समान रूप से एक लोकभाषिक परम्परा प्रचलित है, जिसके अनुसार कहा जाता है कि महानुवादक रत्नभद्र रात्रि में अमानुषियों को प्रतिज्ञाबद्धकर उनसे अपने विहारों का निर्माण करवाते थे। यद्यपि इस तरह के लोक आख्यान में इतिहासवेत्ता विश्वास नहीं करते हैं, किन्तु महानुवादक रत्नभद्र एक साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे महामानव थे। उनके द्वारा अमानुषियों को प्रतिज्ञाबद्धकर उनके पुण्यवर्धन के लिए उनसे बौद्ध विहार के निर्माण में सहयोग प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं है। इस तरह की बातें यद्यपि उनकी जीवनी में स्पष्ट नहीं हुई हैं, किन्तु सद्धर्म के विरोधी अमानुषियों को प्रतिज्ञा में आबद्धकर उन्हें विहारों की रक्षिका नियुक्त करना, पुरङस के मार्ग में पेकर नामक अमानुषी का दमन करना आदि बातें अवश्य मिलती हैं। कई रूप धारणकर लद्दाख के ञरमा, पुरङस के ख्व-छर और गुगे के थोलिङ बौद्ध-विहारों के प्राण प्रतिष्ठा उत्सव एक ही काल में करने की बात भी इनकी उपर्युक्त जीवनियों में आई है। जंघाचारिक सिद्धि द्वारा इच्छानुसार उड़कर जाने का ज़िक्र भी हुआ है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नभद्र सिद्धपुरुष थे।

**शिलाओं पर रत्नभद्र के काय चिह्न**

किन्नौर के विभिन्न क्षेत्रों में शिलाओं पर रत्नभद्र के चरण चिह्न तथा कायचिह्न आज भी देखे जा सकते हैं। स्थानीय लोग इन चिह्नों को क्रमशः जब्स-जेस (चरणचिह्न), स्कु-जेस (काय चिह्न) कहते हैं। रिब्बा में विहार निर्माण करते समय स्थानीय लोगों के विरोध करने पर वे वहाँ से उड़कर रारङ पहुँच गए। वहाँ च्नदारङ में एक शिला पर उनके बैठने के चिह्न हैं। अक्पा और जंगी के मध्य थिकतरी नामक स्थान पर भी एक शिला पर उनके चिह्न मिलते हैं। मूरंग के ऊपर मङदर खोना में ठंगी से आगे डोङखरबु के स्थान पर भी एक शिला पर उनके बैठने के चिह्न हैं। इसके अतिरिक्त रिस्पा, च़ारङ, आसरङ के दङदङ क्षेत्र की शिलाओं पर अंकित चिह्नों को भी रत्नभद्र का ही मानते हैं। इन चिह्नों के प्रति स्थानीय लोगों की अत्यन्त श्रद्धा है। विशेष अवसरों पर वे इन चिह्नों के दर्शन करते हैं और धूप आदि जलाकर पूजा करते हैं।

### रिब्बा में झील निर्माण की इच्छा

प्रचलित जनश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि महानुवादक रत्नभद्र रिब्बा गाँव में एक झील का निर्माण करना चाहते थे। वे रिब्बा क्षेत्र के विभिन्न स्थानों में वास करनेवाले सभी जलसर्पों को प्रतिज्ञा में आबद्धकर एक ही स्थान पर रखना चाह रहे थे ताकि जलसर्पों के कारण विभिन्न जगहों में निकलनेवाला पानी एक ही स्थान पर निकले और वहाँ एक झील बन सके। उन्होंने अपनी इस इच्छा को कार्यरूप देने के लिए रिब्बा के सभी जलसर्पों को तान्त्रिक विधि से एक ही स्थान पर एकत्र किया और लमठु नामक एक बड़े बर्तन को उल्टाकर उससे उन्हें ढककर रख दिया ताकि प्रतिज्ञा में आबद्ध होने से पहले वे इधर-उधर न भाग सकें। कहते हैं कि उन जलसर्पों में रिब्बा का 'डोकुचो' नाम का एक दुर्दान्त जलसर्प भी था। उसने प्रतिज्ञा में आबद्ध होने से पहले ही, रत्नभद्र की इच्छा को भाँप लिया और लमठु को पलटाकर स्वयं तो वहाँ से भागा ही अन्य जलसर्पों को भी भाग जाने का अवसर दे दिया। इस प्रकार उसने रत्नभद्र की रिब्बा में झील बनाने की इच्छा को विफल कर दिया। डोकुचो नाम का वह जलसर्प वहाँ से भागकर जहाँ छुप गया था, उस स्थान पर आज भी बहुत जल निकलता है। रिब्बा गाँव के लोग विशेष अवसरों पर उस जलस्रोत के पास जाकर भिक्षुओं से उसकी पूजा करवाते हैं।

## लोक कल्याणार्थ जलसर्प का मिथक

गुगे राज्य में स्थित क्युवङ का ऊपरी भाग जलहीन था। महानुवादक रत्नभद्र उस स्थान पर धन-धान्य से परिपूर्ण सौ घरोंवाला एक खूबसूरत गाँव बसाना चाह रहे थे। लेकिन वहाँ पहले जल का होना आवश्यक था। उनकी इच्छा थी कि किन्नौर में होपुलङ वर्तमान चिने (कल्पा) के निकट चुङलिङे से तीन जलसर्पों को ले जाकर उस क्षेत्र में इकट्ठा छोड़ दिया जाए ताकि उस क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में जल निकल आए। उन्होंने चुङलिङे के ऊपरी भाग से तीन जलसर्पों को पकड़कर उन्हें गैंडे की खाल से बने एक सन्दूक में बन्द कर दिया और अपने परिचारकों से कहा कि इस सन्दूक का ढक्कन क्युवङ के ऊपरी भाग में पहुँचने तक कोई न खोले। जब परिचारक उस सन्दूक को लेकर किन्नौर के पुराने मार्ग में सुन्नम गाँव के पार पड़नेवाली ब्राति जगह पर पहुँचे तो परिचारकों ने सन्दूक का ढक्कन खोल दिया, जिससे एक जलसर्प भाग गया और वहीं कहीं छुप गया। आज भी ब्राति में उस जलसर्प के छुपने की जगह तिच़ोन में पानी निकलता है। स्थानीय लोग भी इस जल को रत्नभद्र के परिचारकों के हाथ से छूटे जलसर्प का पानी मानते हैं। इसके बाद महानुवादक रत्नभद्र अपने परिचारकों के साथ शेष दो जलसर्पों को लेकर जब पूह गाँव के नीचे सतलुज के निकट स्थित तुगतङ पहुँचे तो जलसर्पों ने परिचारकों का हृदय-परिवर्तन कर दिया और परिचारक पुनः सन्दूक का ढक्कन खोल बैठे। ढक्कन खुलते ही एक दूसरा जलसर्प

भी निकल भागा। जहाँ यह दूसरा जलसर्प सन्दूक से निकलकर छुप गया था, उस जगह भी आज पर्याप्त मात्रा में जल देखा जा सकता है। परिचारकों की ग़लती के कारण महानुवादक गुगे-क्युवङ के ऊपरी भाग में एक ही जलसर्प पहुँचा पाए।[35] तुगतङ में पर्याप्त मात्रा में निकले जल को देखकर आज भी पूह के बुज़ुर्ग लोग अपने को भाग्यहीन मानते हैं और कहते हैं— "काश! पूहवालों के लिए अनुपयोगी तुगतङ जगह में सन्दूक से निकलकर भागनेवाला वह जलसर्प यदि पूह गाँव के ऊपर किसी स्थान पर निकलकर भागता तो खेतों की सिंचाई के लिए पानी की कोई कमी न होती।"

## किन्नौर कैलास को बौद्ध तीर्थ की मान्यता

किन्नौर की आदिम मान्यता में 'यमपुरी' के रूप में ख्यात रलडङ यानि किन्नौर कैलास बौद्धों के उपास्यदेव चक्रसम्वर तथा वज्रवराही का अधिष्ठान है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई 6473 मीटर है। इसे बौद्ध तीर्थ की मान्यता प्रदान करनेवाले भी सम्भवतः महानुवादक रत्नभद्र ही थे। यही कारण है कि इस क्षेत्र की परिक्रमा करनेवाले लोगों के पुण्य संचय के लिए महानुवादक रत्नभद्र ने इस पूरे किन्नौर कैलास परिक्रमा पथ में पाँच-पाँच बौद्ध विहारों की स्थापना की थी। इस बात का संकेत यद्यपि उनकी जीवनियों में कहीं भी नहीं मिलता है, किन्तु यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि उनसे पहले इसकी एक बौद्ध तीर्थ के रूप में पहचान नहीं हुई थी। आज यह किन्नौर कैलास न केवल बौद्धों के लिए, अपितु बौद्धेतर धर्मानुयायियों के लिए भी अत्यन्त पवित्र तीर्थ स्थान है और हिन्दू और बौद्ध दोनों ही अपनी मान्यताओं तथा परम्पराओं के अनुसार इसकी पूजा तथा परिक्रमा करते हैं।

### किन्नौर में शिक्षा व्यवस्था

गुगे राज्य के धर्मराजाओं से प्रोत्साहन मिलने के बाद महानुवादक रत्नभद्र ने किन्नौर आदि क्षेत्रों में बौद्ध विहारों की स्थापना करके इन क्षेत्रों के लोगों के लिए न केवल पुण्य संचय के द्वार खोले प्रत्युत् शिक्षा का मार्ग भी प्रशस्त किया। आज विभिन्न स्थानों में सरकारी शिक्षा संस्थान खुले हैं, किन्तु आज से एक हज़ार वर्ष पहले किन्नौर के लोगों के लिए महानुवादक रत्नभद्र द्वारा बनाए बौद्ध विहार ही शिक्षा के प्रथम केन्द्र थे। इन्हीं केन्द्रों से लोगों ने श्रणसम्पद रूपी दुर्लभ मनुष्य जीवन की सार्थकता को समझा और बुद्ध शासन के निम्न सार को व्यावहारिक रूप दिया :—

**सब्ब, पापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा,**
**सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं ॥** धम्मपद ॥

### किन्नौर आदि क्षेत्रों में बौद्ध संस्कृति का प्रचार

किन्नौर आदि हिमालयी क्षेत्रों में बौद्ध संस्कृति के प्रचार-प्रसार में महानुवादक रत्नभद्र की बहुत बड़ी भूमिका रही है। यह तो निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता

है कि उनसे पहले इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म ने कब पदार्पण किया था, क्योंकि इस बात की पुष्टि के लिए कोई पुरातात्त्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है, पर इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि सम्राट अशोक के समय में उनके धर्म-प्रचारक इस क्षेत्र में भी अवश्य पधारे होंगे। देहरादून में कालसी नामक स्थान पर मिला अशोक का शिलालेख इस बात की ओर संकेत करता है कि उस समय वहाँ एक प्रमुख नगर था और मध्यदेश के साथ हिमालय के व्यापार का यही एक मात्र केन्द्र था। किन्नौर आदि क्षेत्रों के भेड़-पालक अपनी भेड़-बकरियों के साथ इन क्षेत्रों में आते-जाते रहे होंगे।[34] टेढ़े-मेढ़े इन पहाड़ी रास्तों से भेड़-बकरों पर सामान लाते, ले-जाते लोगों को जब किसी मध्यदेशीय व्यक्ति ने पहली बार देखा होगा तो कहा होगा 'अजपथ' यानि बकरे का रास्ता। इन अजपथों से उस समय के अज-पालकों के अंग-संग दुर्गम पहाड़ों पर चढ़ता-उतरता बौद्ध धर्म किन्नौर आदि क्षेत्रों में अवश्य पहुँचा होगा।

इसके बाद सातवीं सदी में चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग जब अपनी भारत यात्रा में कुल्लू पहुँचा तो उसने यहाँ के बीस संघारामों में एक हजार महायानी भिक्षुओं को अध्ययन-अध्यापन तथा ध्यान-भावना में रत देखा था।[35] उस समय भी कुल्लू में वास करनेवाले बौद्ध भिक्षु भगवान बुद्ध के इस आदेश— *"चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय, देवमनुस्सानं। मा एकेन द्वे अगमित्थ। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदि कल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसान-कल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं ब्रह्मचरियं पकासेथ" (महावग्ग)* अर्थात् 'हे भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओ! आदि में कल्याण, मध्य में कल्याण, अन्त में कल्याण इस धर्म का उपदेश करो। सार्थक अत्यन्त परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो, को अवश्य ही नहीं भूले होंगे।

भगवान बुद्ध के इस उपदेश को व्यावहारिक रूप देने के लिए वे—"बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि" का घोष करते हुए अवश्य ही पहाड़ी अज-पथों से किन्नौर आदि क्षेत्रों में पहुँचे होंगे, किन्तु इन क्षेत्रों के लिए नितान्त अपरिचित पालि तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से आनेवाले बौद्ध धर्म का इस क्षेत्र ने कैसा स्वागत किया होगा, इसका परिचय पाने के लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। जब ह्वेन्त्सांग भारत की यात्रा पर था, ठीक उसी काल में बौद्ध धर्म तिब्बत पहुँचा था। उस समय सम्पूर्ण तिब्बत पर धर्मराज स्रोङ-चन-गम्पो राज कर रहे थे। वे ही तिब्बत में बौद्ध धर्म के संस्थापक और तिब्बती साहित्य को आरम्भ करने वाले थे।[36] स्रोङ-चन-गम्पो से लेकर ठि-रल-पा-चन तक यानि 9वीं शताब्दी तक तिब्बत में बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार-प्रसार तथा विकास हुआ। इस समय तक भी बौद्ध धर्म तिब्बत से लौटकर किन्नौर आदि क्षेत्रों में अपनी जड़ें जमा पाया हो, ऐसा

प्रमाण भी नहीं मिलता है।

तिब्बत के राजा ठ्रि-स्रोङ-देउ-चन (9वीं शताब्दी) के काल में उड्डियान के महासिद्धाचार्य पद्मसम्भव राजा के आग्रह पर बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए तिब्बत पहुँचे थे। महासिद्धाचार्य के चरणचिह्न किन्नौर के सुन्नम, नाको आदि कई स्थानों में शिलाओं पर मिलते हैं। इनसे यह तो अवश्य सिद्ध हो जाता है कि आचार्य पद्मसम्भव ने किन्नौर आदि क्षेत्रों को अपने चरणों से पवित्र किया था, किन्तु उन्होंने इस क्षेत्र में धर्म का प्रचार भी किया था, ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य पद्मसम्भव की इस क्षेत्र की यात्रा ऐतिहासिक न होकर एक सिद्धयात्रा यानि चमत्कारिक यात्रा थी। यदि उनकी यात्रा ऐतिहासिक होती तो जिस प्रकार उन्होंने तिब्बत में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार किया था, उसी प्रकार इस क्षेत्र में भी करते। तिब्बत में 40वें राजा ठि-रल-पा-चन को मारकर उसका भाई लङ-दर-मा राजा बना।[37] यह बौद्ध धर्म का परम विरोधी था। यद्यपि उसे भी तीन साल के बाद ही लालुङ-पल-गि-दोर्जे ने मौत के घाट उतार दिया था, किन्तु इन तीन सालों में उसने तिब्बत में बौद्ध धर्म को तहस-नहस कर डाला।

उसकी मौत के बाद तिब्बत का विशाल साम्राज्य, जिसकी नींव धर्मराज स्रोङ-चन-गम्पो ने रखी थी, भी छिन्न-भिन्न हो गया। बौद्ध धर्म का विकास भी तिब्बत में रुक गया। आगे चलकर लङ-दर-मा की ही वंश परम्परा से ठि-किद-दे-जिमा-गोन मध्य तिब्बत से पश्चिमी तिब्बत आया और यहाँ उसने अपने राज्य की स्थापना की। इसी वंश परम्परा में स्रोङ-ङे नामक राजा ने अपने जीवन के पूर्वार्द्ध तक राज्य किया और उसके बाद प्रव्रजित हो ल्ह-ब्ल-म-ये-शेस-ओद (गुरुदेव ज्ञानप्रभ) के नाम से ख्यात हुए। इन्होंने पश्चिमी तिब्बत के गुगे राज्य को बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार का एक प्रमुख केन्द्र बनाया था। इनके आगे के उत्तराधिकारी ल्ह-ल्दे, जङ-छुब-ओद[38] आदि हुए, जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत कार्य किया। गुगे राज्य के इन्हीं धर्मराजों को महानुवादक रत्नभद्र जैसे उद्‌भट्ट विद्वान मिले, जिन्होंने इस हिमालयी क्षेत्र में बौद्ध धर्म को न केवल अंकुरित किया प्रत्युत् उसे पाल-पोसकर उसकी जड़ों को इतनी मज़बूती दी कि यह आज एक हज़ार वर्ष होने पर भी दुनिया को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। महानुवादक रत्नभद्र को बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार में गुगे राज्य के उपर्युक्त धर्मराजों का पूरा प्रोत्साहन प्राप्त था। किन्नौर आदि हिमालयी क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में जो प्रयास किया उसे शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं।

महानुवादक रत्नभद्र ने अपने जीवनकाल में न केवल बौद्ध विहारों की स्थापना की बल्कि अनेक संस्कृत बौद्ध ग्रंथों का भोट भाषा में अनुवाद भी किया। जिन ग्रंथों का पहले अनुवाद हो चुका था, उनका सम्पादन किया। यहाँ पर उनके द्वारा अनूदित एवं सम्पादित ग्रंथों की सूची[39] दी जा रही है--

## कंग्युर में रत्नभद्र द्वारा अनूदित ग्रंथ

1. लघुसंवर तंत्र........
2. अभिधानोत्तर तंत्र : दीपंकर श्रीज्ञान और रत्नभद्र
3. सर्वतथागतकायवाक्चित्तरहस्य गुह्यसमाज : श्रद्धाकर वर्मन् और रत्नभद्र
4. मायाजालमहातंत्रराज : रत्नभद्र
5. श्री चन्द्रगुह्यतिलकमहातंत्रराज : रत्नभद्र
6. सर्वतथागततत्त्वसंग्रह : श्रद्धाकर वर्मन् और रत्नभद्र
7. सर्वरहस्यतन्त्रराज : पद्माकर वर्मन् और रत्नभद्र
8. श्री परमादिमहायानकल्पराज : श्रद्धाकर वर्मन् और रत्नभद्र
9. आर्यवज्रपाणिनीलाम्बरधारणीलोकविजय : दीपंकर और रत्नभद्र
10. अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता : सुभाषित और रत्नभद्र
11. महापरिनिर्वाणसूत्र : कमलगुप्त और रत्नभद्र
12. नैरात्म्यपरिपृच्छा : कमलगुप्त और रत्नभद्र
13. घण्टीसूत्र : धर्मश्रीभद्र और शीलगुण
14. अभिनिष्क्रमणसूत्र : धर्मश्रीभद्र और शीलगुण
15. सुमागधावदान : धर्मश्रीभद्र और शीलगुण
16. चन्द्र प्रभावदान : धर्मश्रीभद्र, सुप्रज्ञ और रत्नभद्र
17. श्री सेनावदान : धर्मश्रीभद्र, सुप्रज्ञ और रत्नभद्र

**सूत्रों की व्याख्या का अनुवाद**

1. अभिसमयालंकारालोक (हरिभद्रकृत) अनूदित और संशोधित : सुभाषित तथा दीपंकर के साथ।[10]
2. अभिसमयालंकार की दुर्बोधालोक टीका : दीपंकर श्रीज्ञान के साथ।
3. प्रज्ञापारमितानवश्लोक पिण्डार्थ : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
4. उक्त ग्रंथ की टीका का अनुवाद : कमलगुप्त के साथ।
5. हस्तबल-प्रकरण : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
6. बोधिचर्यावतार के अनुवाद का संशोधन : धर्मश्रीभद्र और शाक्य लोडोस के साथ।
7. संवृत्तिबोधिचित्त भावनोपदेश वर्णसंग्रह : पद्माकर वर्मन् के साथ।
8. परमार्थ बोधिचित्त भावना क्रमवर्ण संग्रह : पद्माकर वर्मन् के साथ।
9. पारमितायान भावना क्रमोपदेश : पद्माकर वर्मन् के साथ।
10. ध्यानसद्धर्मव्यवस्थान : धर्मश्रीभद्र के साथ।
11. उक्तकृति की टीका का अनुवाद : धर्मश्रीभद्र के साथ।
12. बोधिसत्त्वचर्यासंग्रहप्रदीपरत्नमाला : प्रज्ञाकर वर्मन् के साथ।

13. विमलप्रश्नोत्तररत्नमाला : कमलगुप्त के साथ।
14. सप्तगुणपरिवर्णनाकथा : गंगाधर के साथ।
15. सम्भारपरिकथा : गंगाधर के साथ।
16. चतुर्विपर्यायपरिहारकथा : बुद्धभद्र के साथ।
17. पञ्चविधकामगुणोपलम्भनिर्देश : धर्मश्रीभद्र के साथ।
18. ध्यान सद्धर्मव्यवस्थान : धर्मश्रीभद्र के साथ।
19. योगावतार : धर्मश्रीभद्र के साथ।
20. योगावतारोपदेश : जनार्दन के साथ।
21. सप्तगुणवर्णनाकथा : कमलगुप्त के साथ।
22. त्रिशरणगमनसप्तति : अतिशा के साथ।
23. योगावारोपदेश : जनार्दन के साथ।
24. प्रतिमोक्षभाष्यसम्प्रमुषितस्मरणमात्रलेख : जनार्दन के साथ।
25. सुवर्णवर्णावदान : धर्मश्रीभद्र के साथ।
26. सप्तगुणपरिवर्णनाकथा : गंगाधर के साथ।
27. सुपथदेशनापरिकथा : अतिशा के साथ।
28. दृष्टान्तमाल्य : धर्मश्रीभद्र के साथ।
29. अष्टांगहृदयसंहिता : जनार्दन के साथ।
30. पदार्थचन्द्रिका की टीका का अनुवाद : जनार्दन के साथ।
31. धूपयोगरत्नमाला और अष्टपदीकृत धूपयोग : जनार्दन के साथ।
32. शालिहोत्रीयाश्वायुर्वेदसंहिता : धर्मश्रीभद्र और बुद्धश्री शान्ति के साथ।

### तंत्र ग्रंथों की टीकाओं का अनुवाद

1. विशेषस्तव टीका : जनार्दन के साथ।
2. देवातिशयस्तोत्र टीका : जनार्दन वर्मन् के साथ।
3. कायत्रयस्तोत्रविवरण : श्रद्धाकर के साथ।
4. वर्णनार्हवर्णने भगवतो बुद्धस्य स्तोत्रे अशक्यस्तव के 13वें अध्याय का अनुवाद-पद्माकर वर्मन् के साथ।
5. एकोत्तरिकास्तोत्र : धर्मश्रीभद्र के साथ।
6. सुगतपञ्चत्रिंशत्स्तोत्र : पद्माकर वर्मन् के साथ।
7. देशनास्तव : बुद्धाकर वर्मन् के साथ।
8. बुद्धाभिषेकनामस्तोत्र : बुद्धाकर वर्मन् के साथ।
9. पञ्चतथागतस्तव : श्रद्धाकर के साथ।
10. सप्ततथागतस्तोत्र : श्रद्धाकर के साथ।
11. श्रीचक्रसम्वर की शूरमनोज्ञा टीका सहित : धर्मश्रीभद्र के साथ।

12. श्री भगवदभिसमय : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
13. भगवच्छ्रीचक्रसंवरमण्डलविधि : बुद्धश्री शान्ति के साथ।
14. इसी शीर्षक के ग्रंथ का : धर्मश्रीभद्र के साथ।
15. हेरूकसाधन : धर्मश्रीभद्र के साथ।
16. हेरूकविशुद्धि : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
17. श्रीचक्रसंवरसाधन : अतिशा के साथ।
18. भगवदभिसमय : अतिशा के साथ।
19. चक्रसंवरविस्तरप्रबन्ध : अतिशा के साथ।
20. वज्रयोगिनी स्तोत्र : अतिशा के साथ।
21. चतु:पीठयोगसाधनतंत्रसाधनोपायिका : कमलगुप्त के साथ।
22. तत्त्वोपदेश : कमलगुप्त के साथ।
23. सर्वबुद्धसमायोगतंत्रपञ्जिका : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
24. सर्वबुद्धसमायोग : श्रद्धाकर वर्मन् तथा धर्मश्रीभद्र के साथ।
25. मृत्युवञ्चनोपदेश : अतिशा के साथ।
26. प्रदीपोद्योतन (गुह्यसमाज पर टीका) : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
27. षडंगयोग टीका : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
28. वज्रजाप टीका : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
29. ज्ञान वज्रसमुच्चयतंत्रोद्‌भवसप्तालंकारविमोचन : श्रद्धाकर के साथ।
30. पिण्डीकृत साधन : उन्हीं के साथ।
31. सूत्रमेलापक (गुह्यसमाज पर टीका) : धर्मश्रीभद्र के साथ।
32. गुह्यसमाजमण्डलविधि : सुभाषित के साथ।
33. पञ्चक्रम : श्रद्धाकर वर्मन् और कमलगुप्त के साथ।
34. स्वाधिष्ठानक्रमप्रभेद : श्रद्धाकर वर्मन् और कमलगुप्त के साथ।
35. अभिसम्बोधिक्रमोपदेश : श्रद्धाकर वर्मन् और कमलगुप्त के साथ।
36. अमृतकुण्डलिसाधन : श्रद्धाकर वर्मन् और कमलगुप्त के साथ।
37. महावज्रधरपथक्रमोपदेशामृतगुह्य : धर्मश्री भद्र के साथ।
38. होमविधि : श्रद्धाकर वर्मन् और धर्मश्रीभद्र के साथ।
39. गुह्यसमाजमण्डलदेवकायस्तोत्र : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
40. श्रद्धाप्रलापस्तव : प्रज्ञाश्री गुप्त के साथ।
41. गुह्यसमाज विवरण : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
42. मुखागम : रत्नभद्र।
43. समन्तभद्रसाधन : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
44. गुह्यसमाजमण्डलविधि : पद्माकर वर्मन् के साथ।
45. समन्तभद्रवृत्ति : वीर्यभद्र के साथ।

46. समन्तभद्रसाधनवृत्ति : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
47. मुक्तितिलक व्याख्यान : कमल गुह्य के साथ।
48. गुह्यसमाजमण्डलविधि टीका : वीर्यभद्र के साथ।
49. गुह्यसमाजाभिसमयसाधन तथा मण्डलविधि : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
50. प्रियसाधन : रत्नभद्र।
51. अक्षोभ्यवज्रसाधन : पद्माकर वर्मन् के साथ।
52. सुविशिष्टसाधनोपायिका : वीर्यभद्र के साथ।
53. गुह्यसमाजलोकेश्वरसाधन : अतिशा के साथ।
54. अभिषेक प्रकरण : तथागत रक्षित के साथ।
55. गुह्यसमाजपञ्जिका : विजयश्रीधर और श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
56. यमारिसाधन : अतिशा के साथ।
57. वज्रभैरवतंत्रपञ्जिका : तथागत रक्षित के साथ।
58. देवीप्रभाधराधिष्ठान : देवाकर के साथ।
59. ज्ञानसिद्धिसाधनोपायिका : रत्नभद्र।
60. वज्रयानस्थूलापत्ति : पद्माकर वर्मन् के साथ।
61. कौशलालंकार : धर्मकर श्रीभद्र के साथ।
62. वज्रधातुमण्डलसर्वदेवव्यवस्थान : पद्माकर वर्मन् के साथ।
63. संक्षिप्तमण्डलसूत्रवृत्ति : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
64. तत्त्वसंग्रह की टीका का आंशिक (?) अनुवाद : रत्नभद्र।
65. परमादिवृत्ति : पद्माकर वर्मन् के साथ।
66. परमादि टीका : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
67. मायाजाल की टीका : रत्नभद्र।
68. मायाजाल की पञ्जिका : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
69. सर्ववज्रोदय : बुद्धश्री शान्ति के साथ।
70. त्रैलोक्य विजय मण्डलोपायिका : रत्नभद्र।
71. प्रतिष्ठा विधि तथा करुणोदय : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
72. प्रतिष्ठाविधि : धर्मश्रीभद्र के साथ।
73. होमविधि : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
74. नामसंगीतिवृत्ति : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
75. मञ्जुश्रीनामसंगीतिटीका : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
76. सर्वदुर्गतिपरिशोधनमण्डलसाधनोपायिका : सुभूतिश्रीभद्र के साथ।
77. सर्वदुर्गतिपरिशोधनप्रेतहोमविधि : कनक वर्मन् के साथ।
78. सर्वशुद्धिसंस्कारसूत्रपिण्डितविधि : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
79. महावैरोचनाभिसम्बोधिसम्बद्धतंत्रपूजाविधि : पद्माकर वर्मन् के साथ।

80. वज्रविदारणीधारिणीटीका : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
81. वज्रविदारणीधारिणीव्याख्यानबृहद् टीका : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
82. वृत्तिप्रदीप (संशोधन तथा अनुवाद) : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
83. आर्यमञ्जुघोषस्तोत्र : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
84. सहस्रभुजावलोकितेश्वरसाधन : अतिशा के साथ।
85. स्थिरचक्रभावना : वीर्यभद्र के साथ।
86. अरपचनसाधन : कमल गुप्त के साथ।
87. नागेश्वरराजसाधन : अतिशा के साथ।
88. नयत्रयप्रदीप : पद्माकर वर्मन् के साथ।
89. तत्त्वसिद्धि प्रकरण : अतिशा के साथ।
90. तत्त्वावतार : पद्माकर वर्मन् के साथ।
91. मन्त्रनयालोक : पद्माकर वर्मन् के साथ।
92. तत्त्वसारसंग्रह : जनार्दन के साथ।
93. योगानुत्तरतंत्रार्थावतारसंग्रह : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
94. गुह्यपञ्चशिखा : पद्माकर वर्मन् के साथ।
95. मध्यमभागत्रयविधि : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
96. जलबलिविधि : रत्नभद्र।
97. महामुद्रायोगावतार पिण्डार्थ : रत्नभद्र।
98. नागबलि विधि : अतिशा के साथ।
99. बलिपूजा विधि : अतिशा के साथ।
100. दण्डकभगवच्चक्रसंवरस्तोत्र : वीर्यभद्र के साथ।
101. वज्रयोगिनीसाधन : अतिशा के साथ।
102. पिण्डीक्रमसाधन : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
103. नीलाम्बर वज्रपाणिसाधन : अतिशा के साथ।
104. वज्रधरवज्रपाणिकर्मसाधन : अतिशा के साथ।
105. वज्रविदारणीमण्डलविधि : रत्नभद्र।
106. कर्मकरस्तोत्र : श्रद्धाकर वर्मन् के साथ।
107. यमारिसाधन : अतिशा के साथ।
108. भूमिसूत्र : पद्माकर वर्मन् के साथ।

## महान साधक का रूप

महानुवादक रत्नभद्र विभिन्न स्थानों में बौद्ध विहारों और स्तूपों के निर्माण कार्य में, बौद्धधर्म-दर्शन तथा तंत्र ग्रंथों के अनुवाद, सम्पादन, पूर्वानूदित ग्रंथों के संशोधन व सम्पादन करने में, विद्यार्थियों को दिशानिर्देशन आदि कार्यों में व्यस्त रहने के बावजूद

अपनी दैनिक साधना से कभी विलग नहीं होते थे। उनकी मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनियों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि वे एक महान साधक थे। वैसे तो उन्होंने पुरङ्स के ज्येर से लेकर कल्पा तक के मध्य विभिन्न स्थानों पर साधना की, किन्तु विशेष साधना ग्यमशुक नामक स्थान में की थी। जब महानुवादक रत्नभद्र 85 वर्ष के हो गए थे तो उनकी भेंट विक्रमशिला महाविहार के महास्थविर पद को अलंकृत करनेवाले दीपंकर श्रीज्ञान से हुई थी, जिन्हें हिमालय की बौद्ध जनता जोवो अतिशा यानि ठाकुर अतिशा के शुभ नाम से सम्बोधित करती है। महानुवादक रत्नभद्र ने इस आयु में भी उनके साथ बैठकर न केवल विभिन्न बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया, अपितु अपने जीवन की सन्ध्या वेला में उन्हें अपना अन्तिम गुरु धारणकर उनके आदेशानुसार वे एक वर्ष तक कठोर साधना में भी बैठे थे।[41] संक्षेप में कहा जाए तो महानुवादक रत्नभद्र दस धर्मचर्या[42] का प्रतिदिन सम्पादन करते थे।

## परिनिर्वाण

प्रकृति के नश्वर विधान के आगे सभी विवश हैं। जिसका उत्पाद है उसका नाश निश्चित है, क्योंकि उत्पाद और नाश स्वभाववाली सारी वस्तुएँ अनित्य होती हैं। उत्पाद और नाश की धारा का उपशमन हो जाना ही परमसुख है। भगवान् बुद्ध ने ठीक ही कहा है:–

**अनिच्चावत संखारा उप्पादवयधम्मिनो।**
**उप्पज्जित्वा निरूझन्ति तेसं वूपसमो सुखो** ॥ धम्मपद ॥

महानुवादक रत्नभद्र भी जीवनपर्यन्त प्राणिमात्र का हित सम्पादन करते हुए 98 वर्ष की आयु में यानि सन् 1055 में ख्वचे के विङगिर[43] नामक स्थान पर खेचर को प्राप्त हो गए थे।

## रत्नभद्र के शिष्य[44]

वैसे तो महानुवादक रत्नभद्र के अनेक शिष्य थे, किन्तु उनके बारह ऐसे प्रधान शिष्य थे, जिन्हें उनके समय में चार स्तम्भ तथा अष्ट बीम की संज्ञा दी गई थी।

**उनके चार स्तम्भ तुल्य शिष्य थे– ***

1. ख्वचे के रिनछेन-शेस-रब (उच्चा. रिनछेन शेरब = प्रज्ञारत्न)
2. क्येन वेर के शेस-रब-दम-प (उच्चा. शेरब-दम-पा = परमप्रज्ञ)
3. खिरङ के ये-शेस-दूपल (उच्चा. ये-शेस-पल = ज्ञानश्री)
4. दोलपो के ब्यङछुव-स्ञिङ-पो (उच्चा. जङछुव ञिङपो = बोधिगर्भ)

**उनके बीम तुल्य शिष्य थे–**

1. वजन के योन-तन-लेगस-प (उच्चा. योनतन लेगस-पा = सुगुण)
2. बुबु के लोचावा-बूजङ-मूछोग (उच्चा. लोचावा ज़ङ छोग = अनुवादक

परमभद्र)

3. गुरशिङ के बृत्रोन-हब्रुस-र्ग्यल-मृछन (उच्चा. छोन डुस-ग्यलछन = वीर्यध्वज)
4. मनम के छुल-ख्रिमस स्निङ-पो (उच्चा. छुल-ठिमस ञिङपो = शीलगर्भ)
5. गेथङ के दूपल-ग्यि-ब्यङ-छुव (उच्चा. पलगिजङछुव = श्रीबोधि)
6. सस के गुसेर-बृज़ङ (उच्चा. सेर ज़ङ = सुवर्णभद्र)
7. बगो के योनतन शेस-रब (उच्चा. योनतन शेरब = गुणप्रज्ञ)
8. सेदकर के बूसोद-नमस-शेस-रब (उच्चा. सोनम शेरब = पुण्यप्रज्ञ)

## रत्नभद्र की अवतार परम्परा[15]

प्राणिमात्र के हित में बार-बार जन्म ग्रहण करना बोधिसत्त्वों का स्वभाव है। वे अपने लिए मोक्ष की कामना तब तक नहीं करते हैं जब तक संसार के सभी प्राणी मुक्ति को प्राप्त नहीं हो जाते हैं। उन्हें दूसरों को दुःख से मुक्त करने में जो परम आनन्द मिलता है, उसके आगे अपने मोक्ष को वे तुच्छ समझते हैं। आचार्य शान्तिदेव ने बोधिसत्त्वों के इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

**मुच्यमानेषु सत्त्वेषु ये ते प्रमोधसागरः।**
**तैरेव ननु पर्याप्तं मोक्षेणारसिकेन किम्॥** बोधिचर्य्यावतार-8/108

अर्थात् प्राणियों के (दुःख से) मुक्त होने से तुझे जो प्रमोद-सिंधु मिलेंगे, बस वे ही पर्याप्त हैं। नीरस निर्वाण में है ही क्या?

महानुवादक रत्नभद्र भी लोकहितार्थ बार-बार मनुष्य जन्म ग्रहणकर इस लोक में अवतरित होते हैं। आज तक महानुवादक रत्नभद्र इक्कीस बार अवतार ले चुके हैं। 958 ई. में गुगे राज्य के क्युवङ रदनी में अवतार लेने से पहले वे विभिन्न नामों से पाँच बार अवतार ले चुके थे। रत्नभद्र के पहले के पाँच अवतार सम्भवतः कश्मीर आदि प्रदेशों में हुए थे। इनके अवतारों में पहला नाम ञन-थोस-छेन-पो-फगस-पा-युल खोर क्योङ यानि महाश्रावक आर्य राष्ट्रपाल का आता है। इन्हीं के छठे अवतार महानुवादक रत्नभद्र थे। महानुवादक रत्नभद्र के बाद के अवतार प्रायः गुगे, लाहुल स्पीति तथा किन्नौर के क्षेत्रों में ही हुए हैं। इन्हीं क्षेत्रों में वे बार-बार क्यों अवतार ग्रहण करते हैं? इस सम्बंध में इन क्षेत्रों में प्रचलित एक जनश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि महानुवादक रत्नभद्र जब इन क्षेत्रों में वास करनेवाले अमानुषी तत्त्वों यानि भूत- प्रेतों को पापकर्म का त्यागकर सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध करने लगे थे तो उन अमानुषी तत्त्वों ने महानुवादक के सामने अपनी एक शर्त रखी। उन्होंने कहा— हम प्रतिज्ञा में आबद्ध होकर आपके आदेश का पालन तब तक करते रहेंगे जब तक आप हमारे अधिकारवाले क्षेत्रों में अवतार लेकर आते रहेंगे। जब आप आना बन्द कर देंगे,

तब हम भी आपके आदेश का पालन करने के लिए बाध्य नहीं होंगे।

तब महानुवादक रत्नभद्र ने अमानुषियों की इस शर्त को स्वीकार कर लिया था। इसलिए वे आज तक इन क्षेत्रों में अवतार ग्रहणकर प्राणिमात्र का हित सम्पादन करते आ रहे हैं। महानुवादक रत्नभद्र के सारे अवतारों का जीवन सम्बंधी लेखा-जोखा फिलहाल उपलब्ध न हो पाने के कारण यहाँ उन सबके जन्म स्थान तथा काल का उल्लेख नहीं किया जा सका है। मात्र सभी अवतारों के परिचय के लिए उनके नामों की सूची दी जा रही है। ये नाम भोटी भाषा के साथ देवनागरी में भी दिए जा रहे हैं। साथ ही उनका उच्चारण तथा हिन्दी अनुवाद कोष्ठकों में दिया गया है। जिनके जीवन सम्बंधी थोड़ी-बहुत जो भी सामग्री उपलब्ध हुई है, उन्हें भी उनके नाम के उल्लेख के बाद दिया है। ये नाम इस प्रकार हैं—

1. ञन-थोस-छेन-पो ह्फगस-प-युल-ह्खोर-क्योङ (ञन-थोस-छेन-पो-फगस-पा-युलखोर क्योङ = महाश्रावक आर्य राष्ट्रपाल)।
2. स्लोब-द्पोन-क-मिन-छेन-पो (लोपोन-कमिन-छेन-पो = आचार्य महाकमिन)।
3. स्लोब-द्पोन-स्प्रोस-प-मेद-प (लोपोन टोस-पा-मेद-पा = आचार्य निष्प्रपञ्च)।
4. ग्रुब-थोब-शिन-क-ब-छेन-पो (डुब थोब-शिन-क-ब-छेन-पो = सिद्ध महाशिन स्तम्भ (?)।
5. दे-ब-ब्द-म (देब-भम)।
6. लोछेन रिनछेन ब्ज़ङ पो (लोछेन रिनछेन ज़ङ्-पो = महानुवादक रत्नभद्र)
7. ब्त्सुन-प-द्पल-द्ब्यङस (त्सुन-पा पल-यङस = भदन्तश्रीघोष)।
8. रोङ-प-र्गलो (रोङ-पा गलो = रोङवासी गलो)।
9. र्तोग-ल्दन-अयुर-प (तोगदन अयुर-पा = प्राज्ञ अयुर-पा)।
10. जङ-ज़ुङ-प-म्खस-ग्रुब-छोस-द्वङ-ग्रगस-प (जङ-ज़ुङ-पा-खेडुब-छोस-वङ-ङगस -पा = जङ ज़ुङ वासी सिद्धपंडित धर्मेन्द्र कीर्ति)।
11. म्खन-छेन-ङग-द्वङ-ब्र्ग्य-ब्यिन (खनछेन-ङग-वङ-ग्या-जिन = महोपाध्याय वागीश शक्र)।
12. र्जे-ब्त्सुन-ब्लो-ब्ज़ङ-द्पल-ह्जोर (जेत्सुन लोज़ङ पलजोर = भट्टारक-सुमति गौरव।
13. म्खस-ग्रुब-द्गे-लेगस-ब्सम-ग्रुब (खेडुब गेलेगस-समडुब = पंडित-कल्याण सिद्धाशय)।
14. ब्लो-ब्ज़ङ-ब्स्तन-ह्ज़िन-छोस-ह्फेल (लोज़ङ तनज़िन छोसफेल = सुमति शासनधर धर्मवर्धन)। ये ज़िला किन्नौर के स्क्य-म्खर(क्याखर) में उत्पन्न हुए थे। क्याखर गाँव को आजकल शेलखर भी कहा जाता है।
15. लो-छेन-ब्स्तन-ह्ज़िन-र्ग्यल-म्छ़न (लोछेन तनज़िन ग्यल-छ़न = महानुवादक शासनधर ध्वज)।
16. र्जे-ब्त्सुन-ब्स्तन-पइ-र्ग्यल-म्छ़न (जेत्सुन तनपइ-ग्यल-छ़न = भट्टारक शासनध्वज)

ये नाको के खर-वा गोङ परिवार में पैदा हुए थे। अभी भी उक्त परिवार में उनका व्यक्तिगत पूजागृह है। इनके द्वारा उपयोग किये जानेवाले पूजा उपकरण अभी भी उक्त पूजागृह में विद्यमान हैं। इनके व्यक्तिगत पूजागृह पर यहाँ स्थानीय लोककवि ने एक लोकगीत की रचना भी की है। विशेष अवसरों पर इस लोकगीत को यहाँ के लोग बड़ी श्रद्धा से गाते हैं। इन्होंने नाको में दो दुङ्ग्युर विहारों का निर्माण किया था। नाको के कई धार्मिक शिलालेखों में भी इनका नाम है।

17. योङ्स-ह्ज़िन-द्पल-ल्दन-रिन-छेन-र्ग्य-म्छ़ो (योङज़िन पलदन-रिनछेन ग्याछ़ो = गुरु श्रीमद् रत्नसागर)–ये किन्नौर के गृसुम=स्रग (सुमस्रग) वर्तमान सुमरा में ओग-मा (योग-मा) परिवार में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने तिब्बत के परमपावन पनछेन लामा छोस क्यि-ञिमा (छोस-कि-ञिमा = धर्मादित्य) के गुरु पद को भी अलंकृत किया था।

18. महानुवादक रत्नभद्र का अट्ठारहवाँ अवतार किन्नौर के चाँगो गाँव के खरना परिवार की ञिडोल नामक महिला के पुत्र के रूप में हुआ था। यह महिला जोमो की दीक्षा लेने के कारण अविवाहित थी। अतः लज्जावश उसने उत्पन्न होते ही शिशु को अशुचि में फेंक दिया, जिस कारण तत्काल उसका देहावसान हो गया। यह शिशु महानुवादक रत्नभद्र का अट्ठारहवाँ अवतार था, इसकी जानकारी आम लोगों को तब मिली जब महानुवादक के उन्नीसवें अवतार ने अपने गले की आवाज़ जन्मजात खराब होने पर इसका कारण उन्हें पूर्व जन्म में ञिडोल नामक महिला के द्वारा अशुचि में फेंकना बताया। कहा जाता है कि रत्नभद्र का अट्ठारहवें अवतार के बाद के अवतारों का गला जन्म से ही कुछ अस्पष्ट रहता है।

19. ब्लो-ब्ज़ङ-थुब-ब्स्तन-रिन्छेन-ब्ज़ङ-पो (लोज़ङ-थुबतन-रिनछेन-ज़ङ्पो = सुमति मुनिशासन रत्नभद्र) इनका जन्म किन्नौर के सुमरा में ओग-मा (योग-मा) परिवार में भोट पंचांग के अनुसार जल-शूकर वर्ष के पाँचवें महीने की तेरहवीं तिथि को हुआ था। इनकी माता सोनम बुटित और पिता दोर्जे थे। ये तीन बहिन-भाइयों में सबसे कनिष्ठ थे। इनका बचपन का नाम दोर्जे-द्ङोस-ग्रुब (दोर्जे-ङोस-ड्रुब = वज्रसिद्धि) था। सुमति मुनिशासन रत्नभद्र नाम प्रव्रज्या के समय गुरु द्वारा रखा नाम है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा स्पीति के द्क्यिल (क्यिल) यानि 'की' मठ में और उच्च-शिक्षा तिब्बत में हुई थी। बाद में ये 'की' मठ के अधिष्ठाता भी बने थे।

20. म्थु-थोव-र्दोर्जे (थु-थोव-दोर्जे = स्थान प्राप्त वज्र)। इनका जन्म किन्नौर के स्क्य मुखर (क्याखर आजकल शेलखर) गाँव के गेदपो परिवार में सन् 1958 में हुआ था। इनके पितृपद तथा मातृपद को अलंकृत करने का गौरव क्रमशः श्री थेंचुङ

छेरिङ और श्रीमती टशियुडोन को मिला था। मात्र चार वर्ष की आयु में आधिकारिक घोषणा से पूर्व ही ये परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये थे। इतनी छोटी आयु में परिनिर्वाण को प्राप्त होने पर स्थानीय लोककवि ने इन पर एक लोकगीत की भी रचना की है। लोककवि ने उनके अकस्मात् और असामयिक परिनिर्वाण प्राप्त होने पर आम जनता के दुःख को इस लोकगीत में व्यक्त किया है।

21. बुस्तन-ह्जिन-स्कल-बृज़ङ (तनजिनकलज़ङ = भव्यशासनधर)। यह इक्कीसवां अवतार 20वें अवतार के परिनिर्वाण प्राप्ति के सातवें दिन 10 दिसम्बर, 1961 को हुआ। इस अवतार को लोग लोठेन-दुल्कु (महानुवादक अवतार) के नाम से ज़्यादा जानते हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा स्पीति के कियल यानि 'की' मठ में हुई और उच्च शिक्षा धर्मशाला, जिला कांगड़ा में परमपावन दलाईलामा द्वारा स्थापित बौद्ध दर्शन महाविद्यालय में हुई। ये 'की' मठ के अधिष्ठाता तथा हिमालयीय संस्कृति संरक्षण सभा के अध्यक्ष भी हैं। आप अल्पसंख्यक आयोग, भारत सरकार के सदस्य भी रहे हैं।

    पहले ये भिक्षु थे, किन्तु इस समय गृहस्थ हो गये हैं। इनकी धर्मपत्नी चाँगो गाँव के लामा तोबग्या की सुपुत्री हैं। इन पर स्थानीय लोककवि ने एक लोकगीत की रचना की है, जिसे विशेष अवसरों पर लोग बड़ी श्रद्धा के साथ गाते हैं।

## उपसंहार

इस प्रकार महानुवादक रत्नभद्र, बौद्ध धर्म, दर्शन, तंत्र, स्थापत्य कला, भित्तिचित्र कला, मूर्ति कला के प्रकाण्ड विद्धान तो थे ही, एक महान साधक, अनुवादक एवं सम्पादक भी थे। उन्होंने अपने जीवन काल में जितने कार्य किये उनका आकलन करना सम्भव नहीं है। उनका सम्पूर्ण जीवन प्राणिमात्र के हित के लिए समर्पित था। उन्होंने न केवल मनुष्यों का हित सम्पादन किया, अपितु अमानुषियों को भी सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था।

**कम्मं विज्जा च धम्मो च सीलं जीवितमुत्तमं।**
**एतेन मच्चा सुज्झन्ति न गोत्तेन धनेन वा ॥** विशुद्धिमग्ग ॥
**कायेनैव पठिष्यामि वाक्पाठेन तु किं भवेत्।**
**चिकित्सा पाठमात्रेण रोगिणः किं भविष्यति ॥** बोधिचर्य्यावतार ॥

## पाद-टिप्पणियाँ

1. देव-थेर-ङोन-पो के अनुसार भोट पंचांग 'स-फो-र्त' यानि भू-पुरुष-अश्व वर्ष में रत्नभद्र उत्पन्न हुए थे। यह भोट वर्ष ईसवी सन् के अनुसार 958 में पड़ता है। इसे Giuseppe Tucci ने भी स्वीकार किया। देखें देव-थेर-ङोन-पो-1, पृ. 94, सिठोन-मि-रिगस-पे-दुनखङ, सन् 1984. इसी का George N. Roerich का

अंग्रेजी अनुवाद देखें--Blue Annals, p.-68. Delhi: Moti Lal Banarasi dass, 1976. Giuseppe Tucci देखें Rin-Chen-Bzan-po, Indo-Tibetica-II, p. 25, N. Delhi : Aditya Prakashan, 1988.

2. महानुवादक रत्नभद्र के सम्बन्ध में किन्नौर में प्रचलित जनश्रुति के आधार पर कुछ भ्रान्तियाँ फैली हैं। किन्नौर में रत्नभद्र पर स्थानीय लोककवि द्वारा रचित लोकगीत के कारण कुछ विद्वानों को उनका जन्म स्थान गुगे राज्य का रदनी न होकर किन्नौर का सुमरा होने की भ्रान्ति हुई है। लोकगीत अपने स्थान पर ठीक है, किन्तु लोककवि ने लोकगीत की रचना करते समय उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में नहीं रखा है। रत्नभद्र की अवतार परम्परा के अनुसार अभी तक इनके अधिकारिक तौर पर 19 और पारम्परिक तौर पर इक्कीस अवतार हो चुके हैं। इन अवतारों में 17वां और 19वां अवतार किन्नौर के अन्तिम गाँव सुमरा में हुए हैं। लोककवि ने अपने लोकगीत में रत्नभद्र का जन्म स्थान इनका 17वां अवतार योङजिन पलदन रिन्छेन ग्याछो (गुरु श्रीमद्रत्नसागर) तथा 19वां अवतार लोज़ङ-थुवतन रिनछेन ज़ङ्-पो (सुमति मुनिशासन रत्नभद्र) का लिया और किन्नौर के रिब्बा से रारङ, ठंगी आदि गाँवों में जंघाचारिक सिद्धि के बल पर उड़कर जाने तथा किन्नौर के विभिन्न स्थानों में बौद्ध विहार बनाने का वर्णन गुगे के रदनी में उत्पन्न होनेवाले रत्नभद्र का किया है। रत्नभद्र के सारे अवतार हिमालयी बौद्ध जनता में लोचा या लोचा रिनपोछे (अनुवादक या अनुवादकरत्न) के सम्बोधन से जाने जाते हैं। रत्नभद्र के साक्षात् शिष्य ज्ञानश्री द्वारा लिखित उनकी जीवनी के प्रकाश में आने के बाद अब यह भ्रान्ति दूर होनी चाहिए।

रत्नभद्र के जन्म स्थान 'रदनी' को स्थानीय लोक 'रणि' के नाम से जानते हैं। सन् 1959 से पहले किन्नौर के व्यापारी खब-नमग्या-शिपके-ला-शिपके गाँव-क्युकसो-सरकोङ-ब्रोपचा के पास सतलुज पारकर ऊपर चढ़कर तियग के पास पुनः सतलुज से वार आकर 'रदनी' यानि 'रणि' पहुँचते थे।

3. रत्नभद्र के पूरे परिवार के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त करने के लिए इनके साक्षात् शिष्य ज्ञानश्री द्वारा रचित तथा इन पंक्तियों के लेखक द्वारा हिन्दी में अनूदित--मध्यम जीवनी तथा संक्षिप्त जीवनी क्रमशः विद्याभारती-10, पृ. 33, सन् 1990, विद्याभारती-13, पृ. 21-22, सन् 1993, छोस खोर लिङ बौद्ध सेवा संघ, किन्नौर (हि.प्र.) देखें।

4. सन् 958 में रत्नभद्र उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार सन् 970 में वे 13 वर्ष के थे। इसे लोकेश चन्द्र ने भी स्वीकार किया है। देखें--लोकेश चन्द्र का Giuseppe Tucci की पुस्तक Indo-Tibetica-II में लिखा Preface p.3 वही...।

5. देव-थेर-डोन-पो के अनुसार रत्नभद्र को प्रव्रजित करनेवाले गुरु का नाम

ये-शेस-ज़ड्पो (ज्ञानभद्र) है। सम्भवतः यह नाम उनका भिक्षुनाम था और उनका बचपन का नाम लेगस-पा ज़ड्पो (सुभद्र) था। देखें—देव-थेर-ङोन-पो-, पृ. 94, वही।

नोट : बौद्ध परम्परा के अनुसार प्रव्रज्या के समय गुरु अपने शिष्य का नया नाम रखता है और उसी रोज से उसकी आयु की गणना की जाती है।

6. भोट शास्त्रों में उड्डियान के लिए भोट शब्द उ-र्ग्यन (उग्यन) तथा ओ-र्ग्यन (ओग्यन) मिलता है। ये दोनों उड्डियान का भोट संस्करण यानि उच्चारण है। कुछ आचार्य लोग वर्तमान उड़ीसा प्रदेश को उड्डियान मानते हैं तो कुछ इसे अफ़गानिस्तान का एक भू-भाग मानते है, जो कश्मीर और अफगानिस्तान के मध्य में स्थित है। इसे आचार्य पद्मसम्भव की जन्मभूमि माना जाता है। सिद्ध पीठों में उड्डियान भी एक है।
7. इस डाकिनी की भविष्यवाणी में आया 'भारत के पूर्व से पश्चिम (सभी जगहों को) जल की भाँति (अपने चरणों से) स्पर्शकर' वाक्यांश का भोट मूल 'र्ग्यगर-शर-नुब-छु-बृग्यिन-ब्युगस-नस-नि' है। David L. snellgrove and Tadeusz skorpski ने इसका अंग्रेजी अनुवाद "Witch spread like a flood over India from east to west." किया है। देखें, cultural heritage of Ladakh-I, p.87 Vikas publishing house New Delhi 1980.
8. कश्मीर को भोटवासी *'खछे'* कहते हैं। खछे का शाब्दिक अर्थ क्या है? भोट शास्त्रों में उपलब्ध नहीं होता है। ऐसा प्रतीत होता है यह शब्द *'खश'* का भोट उच्चारण है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन का भी यह मानना है कि *'खस'*, *'खश'* और *'कस'* एक ही शब्द के विभिन्न उच्चारण हैं। नेपाल से कश्मीर तक की प्रभावशाली जातियाँ अब भी खश या कश (कश्मीरी) ही के नाम से पुकारी जाती हैं। तिब्बती भाषा में कश्मीर और कश्मीरियों को *'खछे'* कहते हैं, जो कि *'खश'* का ही बिगड़ा रूप है। देखें—हिमाचल, एक सांस्कृतिक यात्रा-1, पृष्ठ-10
9. भोटवासी कुल्लू को *'ञुङति'* और लाहुल को *'गरजा'* कहते हैं देखे-H. Strachey की पुस्तक Physical Geography of Western Tibet, P-2, published by Asian Educational Services, New Delhi, 1995.
10. कश्मीर यात्रा में रत्नभद्र को आयी कठिनाइयों तथा डाकिनी द्वारा समय-समय पर उन्हें दिये गए दिशानिर्देशन के लिए देखें—रत्नभद्र की मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनी भोटी मूल का इन पंक्तियों के लेखक द्वारा हिन्दी में अनुवाद, जो विद्याभारती में प्रकाशित है। विद्याभारती-10, पृष्ठ 34-35, विद्याभारती-13, पृ. 27-29 वही...।
11. जंघाचारिक सिद्धि को भोट भाषा में र्कङ-म्ग्योगस क्यि-द्ङोस-स्ग्रुब (उच्चा-कङ-ग्योगस-कि ङोस-डुब) कहा जाता है। यह एक तान्त्रिक सिद्धि है।

इसकी प्राप्ति हो जाने पर साधक महीनों का मार्ग एक दिन में तय कर लेता है।

12. आचार्य नाड़पाद को हिमालय तथा तिब्बत की भोट भाषाभाषी जनता नरोपा कहती हैं। परम्परा के लोग इन्हें क्षत्रिय मानते हैं, पर राहुल सांकृत्यायन (पुरातत्त्व निबन्धावली पृ. 121) इन्हें ब्राह्मण कुल का मानते हैं। ये कश्मीर के रहनेवाले और प्रसिद्ध नालन्दा महाविहार के उत्तरी द्वार के महापण्डित थे। ये आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान के भी गुरु रहे हैं। इन्होंने सिद्ध तिल्लीपाद के चरणों में जाकर तान्त्रिक दीक्षा ली और इसी जन्म में परमसिद्धि का लाभ प्राप्त किया था। सिद्धिलाभ के बाद ये तंत्रनय के महान आचार्य रहे। भोटदेशीय कर्ग्युद परम्परा के प्रवर्तक महान लोचावा 'मरपा-छोस क्यि-ब्लो-ग्रोस' के भी ये गुरु थे। भोट देश में प्रचलित कर्ग्युद-परम्परा की भारतीय परम्परा यहीं से आरम्भ होती है। आचार्य नाड़पाद की जीवनी के संक्षिप्त परिचय के लिए देखें—'चौरासी सिद्धों का वृत्तान्त' भोट मूल पृ. 89-92; हिन्दी रूपान्तर इसी में पृ. 52-53, केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान सारनाथ वाराणसी, 1979.

13. 'ङरि' प्रान्त में लद्दाख, गुगे और पुरङस आते हैं। इसे 'ङरि-कोर-सुम' भी कहा जाता था। लद्दाख को मरयुल भी कहा जाता था। देखें—Giuseppe Tucci, Indo-Tibetica-II, P.15, वही.।

14. होपुलङ या होपुलङका—किन्नौर जिले के पड़े (पंगी) से चिने (कल्पा) के आगे 'टोन-नङचे' तक के पूरे क्षेत्र को होपु या साइराक कहते हैं। साइराक यानि दस गाँव वाला क्षेत्र। चिने गाँव के आगे टोन--नङचे की ओर बढ़ने पर कुछ निचाई में स्थित एक छोटी बस्ती आती है। इस बस्तीवाले क्षेत्र को स्थानीय लोग लाङ सारिङ कहते हैं। सारिङ किन्नौरी बोली में खेतों का सामूहिक नाम है। इस लाङ सारिङ में प्रयुक्त लाङ शब्द के सम्बन्ध में यहाँ कोठी गाँव की देवी चण्डिका के चिरोनिङ यानि बखान की ओर ध्यान दिया जाये तो इसमें देवी, चिने के पास 'लङका' नामक राक्षस को मार डालने का जिक्र करती है। स्पष्ट है यह लाङ सारिङ उस लङका राक्षस की जगह रही होगी। उसकी जगह होने से पहले इस क्षेत्र को लङका सारिङ भी कहते रहे होंगे और यह लङका सारिङ कालान्तर में लाङ सारिङ हो गया हो। साथ ही, उस समय इस लङका सारिङ के 'लङका' शब्द को इस पूरे क्षेत्र के वर्तमान नाम 'होपु' के साथ जोड़कर पंगी से टोन-नङचे तक के पूरे क्षेत्र को 'होपुलङका' भी कहते रहे होंगे। यही कारण है कि रत्नभद्र की मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनियों में इस क्षेत्र का नाम होपु के साथ-साथ 'होपुलङक' (उच्चा. होपुलङका) भी आया है। इस पूरे क्षेत्र में शुरू से ही जल की अधिकता रही है। इस कारण 'होपुलङका' नाम कालान्तर में इस क्षेत्र की अपेक्षा कम पानी वाले क्षेत्रों के लिए अधिक जल या दरिया का पर्यायवाची शब्द बन गया हो। आज भी असरङ आदि क्षेत्रों के लोग सब्जी में यदि जरूरत से

ज्यादा पानी डल जाये तो 'हो होपु लड्का लत-तो, होपुलड्का वड्रे' (होपु लड्का कर डाला, होपुलड्का बन गया) यानि सब्जी का दरिया बना डाला या दरिया बन गई, कहते हैं।

सन् 1993 में जब इन पंक्तियों का लेखक रत्नभद्र की संक्षिप्त जीवनी का हिन्दी रूपान्तरण कर सम्पादन कर रहा था तब उपर्युक्त सूचनाएँ नहीं थी। इसलिए लेखक ने किन्नौर के रिदङ (रिब्बा) गाँव में प्रचलित रत्नभद्र द्वारा नाग दमन करने की जनश्रुति के आधार पर उनके द्वारा जलसर्प पकड़कर क्युवङ् ले जाने की बात को रिदङ् से जोड़ा था। साथ ही, होपु क्षेत्र में पहले रिब्बा गाँव तक के क्षेत्र होने तथा वर्तमान होपु क्षेत्र उस कल्पित बृहद क्षेत्र का सिमटा रूप होने की सम्भावना व्यक्त की थी, जो सही नहीं थी। इधर होपु क्षेत्र में कल्पा के निकट पहले किसी लामा द्वारा 'चुङलिङ' के ऊपरी भाग से जलसर्प पकड़कर ले जाने की जनश्रुति अब भी इस क्षेत्र के बुजुर्गों में प्रचलित है। यह जलसर्प पकड़कर ले जानेवाले, लामा महानुवादक रत्नभद्र के अतिरिक्त दूसरे कोई नहीं हो सकते हैं। अतः विद्याभारती-13 के पृष्ठ 37 के फुटनोट संख्या 71 को अशुद्ध मानकर अब इसकी तरह माना जाय।

15. रत्नभद्र की मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनियों में लद्दाख के लिए दमर-युल (उच्चा. मरयुल=लोहित देश) नाम आया है। दमर-युल लद्दाख का प्राचीन नाम है। कहीं-कहीं पर लद्दाख के लिए "मङ-युल" नाम भी आया है। इन नामों के सम्बन्ध में विस्तार से जानकारी के लिए देखें-टशि रबग्यस का लद्दाख का इतिहास, पृ. 10-13, लेह लद्दाख, 1984; सोनम क्यवस दन गेगन का लद्दाख का इतिहास, पृ. 178, सन् 1978.
16. रत्नभद्र द्वारा निर्मित जो विहार ञरमा में था अब उसका खण्डहर ही शेष है। इस विहार के पास ही अलची का प्राचीन विहार मूल रूप में विद्यमान है। विस्तार के लिए देखें--Cultural Heritage of Ladakh-I, P.9,वही।
17. लाहुल के 'जोलिङ' में 11वीं शताब्दी की कुछ उपेक्षित काष्ठ-प्रतिमाओं के होने का जिक्र राहुल सांकृत्यायन ने भी किया है। देखें-- हिमाचल : एक सांस्कृतिक यात्रा-I, पृ. 405, वही। जोलिङ के विहार को स्थानीय लोग 'ल्ह-ब्ल-म-ल्ह-खङ (उच्चा. ला-लामा लाखङ=गुरुदेव का देवालय) कहते हैं। ला-लामा गुरुदेव ज्ञानप्रभ को कहा जाता है। देखें-- Deborah-Klimburg Salter का Article 'Tucci Himalayan Archives Report-2, the 1991 Expedition to Himachal Pradesh Published in East And West , P. 47-IS MEO Vol-44 No. 1, March, 1994.
18. लालुङ तथा ताबो के सम्बंध में प्रामाणिक जानकारी पाने के लिए देखें-- Giuseppe Tucci की पुस्तक-- 'Indo-Tibetica III, Vol-I, PP. 21-121,

New Delhi : Aditya Prakashan, 1988.

19. ताबो हिमाचल प्रदेश के स्पीति क्षेत्र में स्थित है। इस क्षेत्र में हिमालय की अजन्ता के नाम से ख्यात ताबो बौद्ध विहार है।

20. ताबो से चार कि.मी. पहले लरि गाँव पड़ता है। यहाँ का प्राचीन बौद्ध विहार अब मिट्टी के ढेर में परिवर्तित हो चुका है। किसी समय लरि का यह विहार लरिसेर लाखङ् यानि सुवर्ण देवालय के नाम से प्रसिद्ध था। यही कारण है कि यहाँ इस विहार के सम्बंध में लरि-बुमोइ-ग्लु यानि लरि लड़की का गीत आज भी प्रसिद्ध है।

21. नाको के लिए रत्नभद्र की मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनियों में 'स्नेउ' (उच्चा. नेउ) नाम आया है। स्थानीय लोग नाको को 'नॉवो' कहते हैं। यहाँ के एक लोकगीत में नाको का नाम 'नाउ' आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'नॉवो' स्नेउ (नेउ) का ही अपभ्रंश है। नेउ से नाउ--नॉवो बनना भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी सही है। नाको के सम्बंध में विस्तृत जानकारी के लिए इन पंक्तियों के लेखक और हुकमचन्द नेगी का लेख, देखें, 'किन्नौर के नाको गाँव का दिग्-दर्शन', ताबो, पृ. 119-140, हिमाचल कला संस्कृति भाषा, अकादमी, शिमला, (हि. प्र.), 1996. नाको के बौद्ध विहार के सम्बंध में प्रमाणिक परिचय के लिए देखें; Giuseppe Tucci : Indo-Tibetica III-I, pp. 141-172, वही।

22. रत्नभद्र की उपर्युक्त जीवनियों में पूह शब्द का भोटी अक्षर विन्यास 'स्पु' है। पूह में जहाँ रत्नभद्र का विहार स्थित था उसके स्थान पर नया विहार देखने को मिलता है। उस विहार में स्थापित बुद्ध प्रमुख सारिपुत्र, मोदगलायन, महास्थान प्राप्त आर्यावलोकितेश्वर की प्रतिमाएँ पुराने विहार की ही मूल प्रतिमाएँ हैं। यहाँ तक कि इनकी दिशा- स्थिति में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

23. रत्नभद्र की जीवनी में वर्तमान रोपा गाँव का नाम रोपग आया है। यह गाँव गोनयुल घाटी का अन्तिम गाँव है। यहाँ पहुँचने के लिए पूह से पहले श्यासो खड्ड से सम्पर्क मार्ग से जाना पड़ता है। यहाँ रत्नभद्र का विहार मूलरूप में विद्यमान है। विहार का बाहरी कक्ष जहाँ दुङग्युर स्थापित है, वह बाद के वर्षों में बनाया गया है। इसके भीतर पञ्चतथागत तथा आर्यावलोकितेश्वर आदि की प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

24. सुन्नम गाँव भी गोनयुल घाटी में ही पड़ता है। श्यासो खड्ड से 9 किलोमीटर की दूरी पर यह गाँव स्थित है। यहाँ पर भी रत्नभद्र द्वारा निर्मित लघु आकार का एक विहार मूलरूप में विद्यमान है। जहाँ यह विहार स्थित है, उस जगह का नाम 'तिचुलङ' है। इस विहार में एक उच्चासन पर बुद्ध की जीर्ण-शीर्ण मिट्टी की प्रतिमा है। इसकी भित्तियों पर बाद के वर्षों की चित्रकारी है।

25. ह्रङ त्रङ—यह गाँव वर्तमान असरङ ही है। यह लिप्पा से 7 कि.मी. (?) की दूरी पर स्थित है। इस गाँव में रत्नभद्र निर्मित एक विहार है। जहाँ पर विहार है, उस स्थान विशेष का नाम तोक्तो है। इस विहार के भीतर भित्तिचित्र तथा प्रतिमाएँ बाद के वर्षों की हैं। इस विहार को मूलरूप में सुरक्षित रखने के लिए इन पंक्तियों के लेखक ने स्थानीय लोगों की सहायता से 'चुग-लाखङ प्रबन्धक कमेटी' का गठन किया था। उसके माध्यम से सन् 1986 में मूलविहार के प्रदक्षिणापथ की बाहरी सीमा से दीवार खड़ी करके इसके ऊपर दूसरी मंजिल का निर्माण किया गया। इससे पहले भी रामपुर बुशहर के राजा शमशेर सिंह के काल में असरङ के छोरोण दास नेगी ने लोगों की सहायता से इस विहार के बाहरी कक्ष, जिसे अब दुङग्युर कक्ष कहा जाता है, बनवाया था। इस विहार का नवनिर्मित ऊपरी मंज़िल का भीतरी कक्ष अब कंग्युर लाखङ के नाम से जाना जाता है। इसका बाहरी कक्ष 'दुखङ; कहा जाता है।

26. छारङ-यह गाँव ठंगी से 35 कि.मी. की दूरी पर किन्नौर कैलास परिक्रमा पथ में स्थित है। रत्नभद्र की मध्यम जीवनी में छारङ और रिगछे दो नाम आये हैं। इन दो नामों के कारण विद्वानों में दो अलग गाँव होने की भ्रान्ति होती है। 'रिगछे' और छारङ दो पृथक-पृथक गाँव नहीं हैं प्रत्युत् छारङ में, जहाँ पर रत्नभद्र का विहार स्थित है, उस जगह का नाम रिगछे/ रङरिगछे है। यहाँ रत्नभद्र का विहार आज भी मूलरूप में विद्यमान है। इसके भीतर की अधिकांश प्रतिमाएँ भी मूल प्रतिमाएँ ही हैं। इसके भित्तिचित्र कुछ बाद के वर्षों के प्रतीत होते हैं। यह विहार इस विहार की रक्षिका जो रङरिग-स्रुङमा (रङरिग टुङ-मा) के नाम से जानी जाती हैं, के नाम से स्थानीय लोगों में प्रसिद्ध है। इस समय यह बौद्ध विहार 'ड्रुग-पा' सम्प्रदाय के अधिकार में हैं। पहले यह विहार 'गे-लुगस' सम्प्रदाय के अधीन था। यहाँ पर सन् 1972 से छारङ तथा कुनु गाँव की प्रव्रजित महिलाओं की डासङ यानि ननरि चल रही है।

27. शङ्स—यह वर्तमान ठङे (ठंगी) गाँव का प्राचीन नाम है। इस गाँव के नामकरण के सम्बन्ध में इन पंक्तियों के लेखक का लेख 'किन्नर कैलास परिक्रमा पथ में बौद्ध-बौद्धेतर पूजा स्थल' हिमाचल कला, संस्कृति, भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका सोमसी दिसम्बर—95 में देखें।

28. मोने—यह वर्तमान कामरू गाँव का प्राचीन नाम है। आज भी किन्नौर के लोग कामरू को मोने और यहाँ के निवासियों को मोन-मेन यानि मोन निवासी कहते हैं। इसका कामरू नाम यहाँ पर कामक्षा देवी की स्थापना के बाद पड़ा है। रत्नभद्र का विहार यहाँ के असतङ्छे के स्थान पर था, जो कभी ग्लेशियर की चपेट में आ जाने के कारण नष्ट हो गया था। उस विहार की अवलोकितेश्वर की एक भव्य प्रतिमा खड्ड में मिली थी, जिसे स्थानीय लोगों ने कामरू गाँव में

एक विहार की स्थापना करके उसके भीतर स्थापित कर दिया था। यह दुर्लभ प्रतिमा जून 1993 में चोरी हो गई थी, जिसे अब बरामद कर लिया गया है।

29. चांगो गाँव का रत्नभद्र द्वारा निर्मित विहार गाँव के मध्य एक ऊँचे टीले पर स्थित है। विस्तार से परिचय के लिए देखें- Giuseppe Tucci का Indo-Tibetica-III, vol.-I, pp.122-123, वही।
30. चुलिङ—यह गाँव किन्नौर के हङ घाटी में स्पीति नदी के पार हङमद गाँव से पहले पड़ता है। इस गाँव का पुराना नाम 'जोलिङ' था। यह नाम यहाँ पर्याप्त मात्रा में दूध-दही होने के कारण पड़ा था। यहाँ पर 'सेले' नामक स्थान पर रत्नभद्र द्वारा निर्मित एक छोटा विहार अत्यन्त ही जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। इस विहार में बुद्ध, बोधिसत्त्व महास्थान प्राप्त, वज्रसत्त्व आदि की मिट्टी की प्रतिमाएँ मूलरूप में, पर अत्यन्त ही शोचनीय स्थिति में विद्यमान हैं। जनश्रुति के अनुसार इस विहार का निर्माण स्थानीय देवता तथा गुरु ने मिलकर किया था।
31. रिब्बा का स्थानीय नाम रिदङ है। यहाँ पर काष्ठ द्वारा निर्मित एक विहार मूलरूप में विद्यमान था जो रत्नभद्र ने ही बनवाया था। रत्नभद्र का वह विहार 14 जुलाई, सन् 2006 को आग लगने के कारण नष्ट हो गया था। अब उसकी जगह गाँव वालों ने नया बौद्धविहार बनाया है। यह वही गाँव है, जहाँ के निवासियों ने रत्नभद्र के हाथ काटने की योजना बनायी थी और वे जंघाचारिक सिद्धि के बल से उड़कर रारङ गाँव के छ्नदारङ पहाड़ी की एक शिला पर उतरे थे। आज भी इस शिला पर उनके कायचिह्न देखने को मिलते हैं। छ्नदारङ में उनके द्वारा निर्मित स्तूप आज भी विद्यमान हैं।
32. छितकुल बासपा उपत्यका का अन्तिम गाँव है। यहाँ की देवी का नाम 'माथी' है। यहाँ रत्नभद्र द्वारा निर्मित जो विहार था, उसके सम्बन्ध में प्रचलित लोकभाषिक परम्परा के परिचय के लिए देखें—इन पंक्तियों के लेखक का लेख 'किन्नर कैलास परिक्रमा पथ में बौद्ध-बौद्धेतर पूजा स्थल' वही।
33. महानुवादक रत्नभद्र द्वारा होपु से क्युवङ ले जाने के लिए जलसर्प पकड़ने तथा उनके छूट जाने के सम्बन्ध में जानकारी के लिए देखें-रत्नभद्र की मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनी क्रमशः विद्याभारती-10, पृ. 42; विद्याभारती-13, पृ. 39, वही।

नोट : होपु की जिस जगह से रत्नभद्र जलसर्प पकड़कर ले गये थे उस जगह विशेष का नाम 'चुङलिङ' है। यह जगह कल्पा से पंगी के रास्ते में पड़ती है। सुन्नम में जहाँ पर एक जलसर्प छूटकर भागा था, उस जगह का नाम उपर्युक्त दोनों जीवनियों में डति, खति 'डग-रि' आदि विविध रूपों में आया है। इसमें लिपिक का प्रमाद प्रतीत होता है।

34. राहुल सांकृत्यायन—हिमाचल : एक सांस्कृतिक यात्रा-1, पृ. 54, वही।
35. Buddhist Records of the western world. Translated from the

chinese of Hiuen Tsiang Ad-629, by Samuel Beal p.177, New Delhi : Munshi Ram Manoher Lal, second Edition-1983.

36. तिब्बत में बौद्ध धर्म के पहुँचने तथा धर्मराज स्रोङ-चन-गम्पो के साम्राज्य के सम्बन्ध में देखें—राहुल सांकृत्यायन—हिमाचल, एक सांस्कृतिक यात्रा-1, पृ. 54 वही ।

37. तिब्बत की राजवंशावली के परिचय के लिए देखें—शरत चन्द्रदास की पुस्तक—Contribution in the Religion and History of Tibet,pp. 44-56, New Delhi : Manjusri, 1970

38. गुगे की राजवंशावलि के परिचय के लिए देखें—Giuseppe Tucci का Indo Tibetica-II.pp., 17-21, वही... । इसमें Giuseppe Tucci ने ग्यलरबस पदमाकरपो, देव-थेर डोन-पो आदि में उपलब्ध वंशावलि को जोड़ा है ।

39. महानुवादक रत्नभद्र द्वारा भारतीय पंडितों के साथ बैठकर अनूदित ग्रंथों की संख्या विभिन्न कंग्युर-तंग्युर संग्रहों में और ज्यादा है, किन्तु यहाँ पर Giuseppe Tucci की Indo Tibetica-II में जो सूची दी है, उसे ही लिया है । देखें—Indo Tibetica-II, pp. 40-49, वही ।

40. यहाँ से आगे सभी जगहों पर रत्नभद्र ने जिन विद्वानों के साथ बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया है, उन्हीं के नाम दिये हैं । इसलिए 'के साथ' से महानुवादक रत्नभद्र के साथ समझा जाय ।

41. दीपंकर श्रीज्ञान को अपना गुरु धारणकर वर्षभर के लिए कठोर साधना में बैठने के सम्बन्ध में विस्तार से जानकारी के लिए देखें—विद्याभारती-10, पृ. 42-44; विद्याभारती-13, पृ. 40-41, वही ।

42. दस धर्मचर्य्या—(1) धर्मशास्त्र लेखन (2) पूजन (3) दान (4) श्रवण (5) वाचन (6) उद्ग्रहण (7) प्रकाशन (8) स्वाध्याय (9) चिन्तन (10) भावना ।

43. महानुवादक रत्नभद्र के खेचर प्रस्थान यानि परिनिर्वाण प्राप्त करने के सम्बन्ध में लोगों की अलग-अलग मान्यताएँ हैं । देखें—विद्याभारती-13, पृ. 43 का फुटनोट संख्या-88, वही ।

44. स्तम्भ तथा बीम सदृश शिष्यों के सम्बन्ध में देखें—विद्याभारती-10, पृ. 45, वही ।

45. महानुवादक रत्नभद्र के 18वें 20वें तथा 21वें अवतारों को छोड़कर अन्य 17 अवतारों के मात्र नाम, परिचय और 19वें अवतार के जीवन सम्बन्धी विस्तृत परिचय के लिए देखें—

Collected Biographical Material About Lo-Chen-Rin-chhen-Bzan-Po and his subsequent Re-embodiments, p. 278-433 वही ।

# ज्ञानश्री द्वारा विरचित लोछेन रिनछेन ज़ङ्-पो की स्फटिक रत्न गुम्फित माला तपोप्रदीप नामक मध्यम जीवनी

**भूमिका**

सामान्यतः धर्म संस्कृति से उपजता है और जो धर्म जिस देश की संस्कृति से जन्म लेता है, वही उस देश का धर्म माना जाता है। इस विचार से बौद्ध धर्म भारतीय धर्म है। कुछ धर्म ऐसे भी होते हैं, जो बिना किसी व्यवधान के हर संस्कृति में खप जाते हैं, हर देश और हर जाति की संस्कृति के अनुरूप पनपते और ढलते हैं, इस अर्थ में बौद्ध धर्म मानव धर्म है।

ईसा की सातवीं सदी के आस-पास बौद्ध धर्म को भोट देशीय राजाओं का आमन्त्रण मिला तो भारतीय बौद्ध धर्मावलम्बियों ने सहर्ष वहाँ जाकर उसका प्रचार करना स्वीकार किया। परन्तु जाति, भाषा एवं संस्कारों में अत्यन्त भिन्न भोट जैसे देश में भारतीय लोगों को अपने धर्म-प्रचार के कार्य में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप धर्म का प्रचार भाषायी अनुवादकों के माध्यम से होने लगा। धर्माचार्यों ने अनुवाद करनेवाले व्यक्तियों को 'लोकचक्षुः' एवं 'लोचना' जैसे शब्दों से सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया। इन शब्दों का भोटी रूप 'लोत्सावा' है।

भोट देश में बौद्ध धर्म की स्थापना करने में राजाओं की भूमिका के साथ लोत्सावाओं का भी सर्वाधिक योगदान रहा है। आज दुनिया में बौद्ध धर्म का सबसे अधिक अध्ययन उन लोत्सावाओं की भाषा में ही होता है। सातवीं सदी ईसवी से लेकर दसवीं सदी ईसवी तक के भोट देशीय लोत्सावाओं की संख्या बहुत अधिक है। इनमें से दसवीं सदी से पूर्व के लोत्सावाओं को स्ङ-ग्युर-गि-लोत्सावा यानि पुराने अनुवादक कहा जाता है और बाद के लोत्सावा ग्सर-म्इ-लोत्सावा अर्थात् नवीन अनुवादक कहे जाते हैं। नवीन लोत्सावाओं की परम्परा लोत्सावा रिनछेन ज़ङ्-पो (=अनुवादक रत्नभद्र) से शुरू होती है। लोत्सावाओं की पंक्ति में यह सर्वाधिक प्रसिद्ध लोत्सावा रहे हैं। रिनछेन

ज़ङ्-पो ल्ह-ब्ल-ये-शेस-ओद(ल्ह-लामा-ये-शेस-ओद) (=गुरुदेव ज्ञानप्रभ) के काल के एक महान् लोच़ावा थे।

**ल्ह-लामा-ये-शेस-ओद एवं रिनछेन ज़ङ्-पो**

ये-शेस-ओद शङ-शुङ[1] प्रदेश के नरेश ब्रुक-शिस-मृगोन (टशि गोन=मंगलनाथ) के पुत्र थे। उनके पुत्रों का नाम क्रमशः खोर-रे और स्रोङ-डे था। धर्म के प्रति अधिक आस्थावान होने के कारण बाद में खोर-रे परिव्राजक बन गये। खोर-रे का भिक्षुनाम ये-शेस-ओद (ज्ञानप्रभ) रखा गया[1]। बाद में वे ल्ह-ब्ल-म-ये-शेस-ओद (ल्ह-लामा-ये-शेस-ओद) (=गुरुदेव ज्ञानप्रभ) के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

उनके समय भोट देश में बौद्ध धर्म की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। कुछ ऐतिहासिक कारणों से उसमें बहुत-सी खामियाँ आ गई थीं। ये-शेस-ओद उन्हें दूर करना चाहते थे। पूर्व अनूदित शास्त्रों का वे नये सिरे से मूल्यांकन एवं पुनः अनुवाद कराना चाहते थे। इन कार्यों के लिए उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण योजनाएँ बनवायीं। पहली भारत में धर्म-दर्शन के विशेषज्ञ पंडितों को अपने देश में आमन्त्रित करने सम्बंधी और दूसरी अपने देश के प्रबुद्ध विद्यार्थियों को लोच़ा सिखाने के लिए भारत भेजना। इस कार्य में लोच़ावा रिनछेन ज़ङ्-पो सर्वाधिक प्रबुद्ध मेधावी लोचावा रहे हैं।

रिनछेन ज़ङ्-पो के जीवन के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सभी भोट देशीय इतिहास लेखकों ने इनकी चर्चा की है, पर उनके जीवन में घटी घटनाओं का पूर्ण विवरण किसी ने भी नहीं दिया। इस समय इनके जीवन वृत्तान्त के रूप में चार ग्रंथ उपलब्ध हैं। गुगे खिरङ के निवासी ये-शेस-दृपल (ये-शेस-पल= ज्ञानश्री) द्वारा थोदिङ नामक स्थान में लिखे दो ग्रंथ मिलते हैं। दोनों ग्रंथों का नामकरण भी एक जैसा ही है, अभिधेय विषय भी एक जैसे हैं, पर दोनों में अनेक जगहों पर कुछ अन्तर भी विद्यमान हैं।

तीसरा ग्रंथ 'एवं छोदन' नामक प्रसिद्ध विहार के ग्रंथालय में विद्यमान है। इसमें 'महाकाल' 'पञ्जर-नाथ' धर्म पालक देव के वृत्तान्त के अन्तर्गत लोच़ावा का जीवन विवरण प्राप्त है। इसे 1961 में लामा लोजङ तन्ज़िन (=सुमति शासनधर) द्वारा अलगकर पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया है।

चौथा ग्रंथ 'शङ-शुङ-पा (शङशुङ निवासी) छोस-यङ-ङगस-पा' नाम के प्रख्यात विद्वान द्वारा लिखित एक काव्यात्मक वृत्तान्त है। यह ग्रंथ खिरङ के ये-शेस-पल कृत वृत्तान्त पर आधारित है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त एक बृहद् जीवन वृत्तान्त होने का भी उल्लेख ज्ञानश्री ने किया है, किन्तु यह अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। लोच़ावा के वृत्तान्त के सम्बन्ध में इधर पाश्चात्य विद्वान टुचि ने भी अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिसका इतालवी से अंग्रेज़ी अनुवाद नानसी किप्प स्मिथ ने किया और लोकेशचन्द्र ने उसे सम्पादितकर 1988 में आदित्य प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित किया है। पर यह भावानुवाद मात्र ही है।

## प्रस्तुत अनूदित ग्रंथ

प्रस्तुत ग्रंथ वर्तमान पश्चिमी तिब्बत के गुगे के खिरङ्वासी ज्ञानश्री द्वारा विरचित लोछेन रिनछेन-जङ्-पो यानि महानुवादक रत्नभद्र की मध्यम जीवनी है। इसका पहली बार अंग्रेजी अनुवाद David L. Snellgrove तथा Tadeuz Skorpski ने अपनी पुस्तक Cultural Heritage of Ladakh-1 में "The Saving cord of the crystal Rosary" शीर्षक से सन् 1980 में प्रकाशित किया। साथ ही इन दोनों विद्वानों ने भोटी मूल का सम्पादित रूप भी उसी के साथ प्रकाशित किया है। उन दोनों का यह अनुवाद बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

महानुवादक रत्नभद्र जैसे महान व्यक्ति के जीवन से सम्बद्ध विवरण किसी भारतीय भाषा में नहीं था। इसी कमी को ध्यान में रखकर इन पंक्तियों के लेखक ने छोस खोर लिङ बौद्ध सेवा संघ, किन्नौर (हि.प्र.) की पत्रिका विद्याभारती-10 (पृ. 30-47, सन् 1990) में महानुवादक रत्नभद्र की इसी मध्यम जीवनी का हिन्दी रूपान्तरण 'ज्ञानश्री द्वारा विरचित लोचावा रिन्छेन ज़ङ्पो का जीवन वृत्तान्त प्रथम' शीर्षक से प्रकाशित किया था।

यह प्रसन्नता की बात है कि इस मध्यम जीवनी का पुनः प्रकाशन, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी कर रही है। इसके प्रथम प्रकाशन में कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं, उन्हें इस संस्करण में शुद्ध कर लिया गया है। साथ ही इस बार जीवनी 'ज्ञानश्री द्वारा विरचित लोछेन रिनछेन जङ्-पो की स्फटिक रत्न गुम्फित माला तपोप्रदीप नामक मध्यम जीवनी' शीर्षक से प्रकाशित हो रही है।

यह बात यहाँ इसलिए कही जा रही है ताकि इसके प्रथम संस्करण तथा इस द्वितीय संस्करण के शीर्षक में फेरबदल के कारण पाठकों में किसी प्रकार की भ्रान्ति न हो। अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि अनुवाद शब्दशः हो और ग्रंथ में कही बातें सही अर्थ में पाठकों तक पहुँच जाएँ।

गन्थ में ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा स्थलों के नाम जिस भोटी अक्षर विन्यास में लिखे गये हैं, उसी अक्षर विन्यास में देवनागरी में लिखे गये हैं। इनके उच्चारण तथा अर्थ कोष्ठकों में दिये हैं, ताकि भोटी भाषा से नितान्त अपरिचित पाठकों को सही भोटी उच्चारण तथा उनके अर्थों का ज्ञान हो सके।

# मध्यम जीवनी का मूल

**प्रशस्ति**

सूर्य चन्द्ररूपी प्रदीप, सत्पुरुष महालोचावा के चरणों में (मेरा) नमस्कार है।

उन परम गुरु की कृपा अनुस्मरणार्थ (तथा) श्रद्धा (रूपी) अंकुरोत्पाद के लिए (उनके श्री) मुख से कही (स्वयं की जीवनी) श्रवणार्थ (यहाँ) संक्षेप में लिखी जा रही है। उन बोधिसत्त्व की (इस) लघु जीवनी को (यहाँ) ग्यारह मदों में दिखाया जा रहा है—

1. उन-महापुरुष के (सम्बन्ध में) किस प्रकार की भविष्यवाणी की गई है।
2. (उनकी) वंश परम्परा क्या रही।
3. उनका जन्म कहाँ हुआ।
4. (उनकी) प्रव्रज्या कहाँ हुई।
5. अनुवाद आदि (विद्या) अध्ययन उन्होंने कहाँ किया।
6. किन गुरुओं तथा उपाध्यायों से (उन्होंने) धर्म ग्रहण किया।
7. सद्धर्म (शास्त्रों) का अनुवाद (उन्होंने) कैसे किया।
8. किन-किन स्थानों में किस प्रकार (उन्होंने) विभिन्न विहारों का निर्माण किया।
9. (उन्होंने) इक्कीस छोटे प्रदेशों में किस तरह पूजा की।
10. विशिष्ट साधनाएँ (उन्होंने) कहाँ (कहाँ) पर कीं।
11. किस जगह से (उन्होंने) खेचर को प्रस्थान किया।

**1. (शाक्य) मुनि की भविष्यवाणी**

'मेरे परिनिर्वाण के बारह सौ वर्षों (त्ङ्-ब्र्ग्य-फ्रग-ब्र्दुन) के बाद एक खगमुखी भिक्षु होंगे, (जो) मेरे शासन का विस्तार करेंगे'—सूत्र तथा तंत्र (के ग्रंथों) में ऐसी बहुत सी भविष्यवाणियाँ की गई हैं[1]।

**2. वंशपरम्परा**

उन गुरु का मूल निवास स्थान गुगे (नामक प्रान्त) के ख्यिन्न्हे हुगस-वेर था। (उनका) कुल ख्यिन्ने-ग्यु-स्प्र (ख्य-चे-यु-डा) का गुशेन (शेन) था। उनका पैतृक वंश छह देवपरम्पराओं में (से एक) था, जिसे ल्ह-जि-म-हुगस (ल्ह-जिमा-हुगस) की परम्परा

के होने से हुगस-बेर कहा जाता है। मामा को क्लु (लु=नाग) वंश से सम्बद्ध होने से क्लु (लु) जोर भी कहा जाता है। उनके तेरह पैतृक पुश्तों[2] में से पितामह गृयु-स्त्र-स्तोंड-बृचन (यु-डा-तोड-चन) के दो पुत्र थे। (उन दो में) बड़े भाई प्रव्रजित होने के बाद गृहस्थ हो गये थे। (उनका) नाम वन-छेन-पो-गृजोन-नु-दूवङ-फ्युग (वन-छेन-पो-जोन-नु-वङ-छुग=महाभदन्त कुमारेश्वर) था। छोटे भाई (का नाम) गुङ-क्लोन-छेन-पो-गृयु-थोग-स्त्र (गुङ-लोन-छेन-पो-यु-थोग-डा) था। वन-छेन-पो-जोन- नु-वङ-छुग की (सन्तान में) लोचावा (=अनुवादक) आदि चार भाई-बहिन थे। उनकी (वंश) परम्परा को गृयु,-स्त्र-गृशेन-पो (यु-डा-शेन-पो) कहा जाता है, (ये) रि-प-शि-चेर-ब (रिपा-शि-चेर-वा), क्यु-वङ-प(क्यु-वङ-पा), रो-पग-प (रो-पग-पा) (आदि) हैं। गुङ- क्लोन-गृयु-थोग-स्त्र(गुङ-लोन-यु-थोग-डा) से लो-छुङ-लेगस-पइ-शेस-रब (लो-छुङ- लेग-पइ-शे-रब)(=कनिष्ठ अनुवादक सुप्रज्ञ) आदि तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनकी (वंश) परम्परा को गृयु-स्त्र-चुङ-पो (यु-डा-चुङ-पो) कहा जाता है। वे जर-वङ-प (जर-वङ-पा), शोन-खर-प(शोन-खर-पा), म-यङ-प(मयङ-पा), च़-हङ-गिस हैं।

### ३. जन्म स्थान

पितामह यु-डा-तोड-चन का पूजास्थान क्यु-वङ-रदनि था। पिता का नाम वन-छेन-पो-जोन-नु-वङछुग था। (उनकी) माँ चोग-रो (वासिनी)-ज़[3] कुन-बृजङ-शेस-रब-बृस्तन-म (कुन-ज़ङ-शे-रब-तन-मा) थी। उनकी (सन्तान में) चार बहिन-भाई उत्पन्न हुए। बड़े भाई शेस-रब-दूबङ-फ्युग (शेरब वङछुग) (=प्रज्ञेश्वर), मंझले भाई रिन-छेन-दूबङ-फ्युग (रिनछेन-वङछुग) (=रत्नेश्वर), छोटे भाई योन-तन-दूबङ-फ्युग (योनतन वङछुग) (=गुणेश्वर) और (इन) सबकी बहिन शेस-रब-छ़ो-मो थी। मँझले रिनछेन वङछुग (ही) गुरू लोचावा थे। बड़े भाई शेरब वङछुग गृहस्थ के वेश में ही रहे। छोटे भाई योनतन वङछुग प्रव्रजित होकर (सब तरफ से) निश्चिन्त हो गए। बहिन ने भिक्षुणी बनकर गुह्यमन्त्र धर्मों का अध्ययन किया और (वे) सिद्धि प्राप्तकर र्नल-ह्व्योर-म-छोस-क्यि- स्ग्रोन-म (नल-जोर-मा-छोस-कि-डोन-मा) (=योगिनी धर्म प्रदीपा) के नाम से ख्यात हुईं।

बोधिसत्त्व लोचावा के गर्भ में रहते समय माँ को(अपने) दायें कन्धे पर सूर्य, बायें कन्धे पर चन्द्रमा और शीश पर फीरोजा की चोंच तथा पंजे वाला एक सुनेरा गरूड[4] (जो अपने पंखों को) फड़फड़ाता, मुख से मधुर ध्वनि का उच्चारण करता रहता था, के अहर्निश यानि सदैव (रहने का) आभास होता था। नौ माह (पूर्ण होकर) दसवें तक (शिशु के गर्भ में) रहने पर भी, माँ का शरीर सुखद, हल्का, निरोग आदि शुभ लक्षणों से युक्त रहा। इसके बाद प्रसूतिकाल आने पर (वह) सुनहरा गरुड़ माँ के शीश में प्रवेशकर गुप्तांग से निकल और तीन बार माँ की परिक्रमाकर आकाश में (उड़कर) जाता हुआ (माँ को) स्वप्न में दिखा। (स्वप्न में ही) फूलों की वर्षा होती (तथा उन फूलों को) वहाँ रह रहे लोगों द्वारा न उठाये जाते भी देखा। र्त-लो (=अश्व वर्ष) के

ग्रीष्म-ऋतु के अन्तिम महीने में (शुक्ल पक्ष की) दसवीं तिथि को माँ क्यु-वङ क्षेत्र के एक लम्बे से खेत में गुड़ाई करते समय, जरा सा अस्वस्थ हो जाने के कारण खेत के ऊपरी किनारे में जा बैठी। वहाँ माँ के दायें कन्धे पर एक मोर, बायें कन्धे पर एक कोयल और सिर पर एक तोता साक्षात् रूप में उतरे। पिता के—"इस तरह के पक्षी कहाँ से आए हैं?"—कहते ही तीनों (पक्षी) माँ (के शरीर) में लीन हो गए। माँ ने तत्काल बिना पीड़ा के, एक शिशु, जो नीले वर्ण का, खगमुखी तथा खग नयन वाला, (और जिसकी) दाहिनी हथेली में एक चक्र का चिह्न था, को जन्म दिया।[5] दो वर्ष की अवस्था में ही (वह बालक) मुख से अ आ इ ई का उच्चारण करने लगा। भूमि पर (भी) ऐसा ही लिखकर अञ्जलिबद्ध खड़े रहने लगा तो (अपने पुत्र की इस लीला को देखकर) पिता ने, "यह कर्म शेष (यानि भाग्य) वाला है"—कह (उसे) पीतवस्त्र पहनाकर उपासक बनाया। यह बोधिसत्त्व के जन्म की कहानी है।

**4. प्रव्रज्या**

तेरह वर्ष की आयु में (उन्होंने) उपाध्याय (लेगस-प-बृज़ङ-पो) लेगस-प-ज़ङ-पो (=सुभद्र[6]) से प्रव्रज्या ग्रहण की और (उनका) नाम भी (रिन-छेन-बृज़ङ-पो) रिन-छेन-ज़ङ्-पो (=रत्नभद्र) रखा गया। उपाध्याय से त्रिशतिका (नामक विनयशास्त्र के ग्रंथ को) टीका सहित सुनते ही (उन्होंने) हृदयंगम कर लिया।

**लोत्सावा बनने के पूर्व निमित्त**

(उन्होंने) लोत्सा आदि विद्या-अध्ययन इस प्रकार से किया—जब वे सत्रह वर्ष (के हो गए) थे, (तो एक दिन) उड्डियान[7] से एक पंडित (उनके घर) आए, उसे माँ ने खाद्य-सामग्री लेकर (अपने घर में) भोजन करवाया। (पंडित के चले जाने पर) उस जगह पर एक सुन्दर भारतीय पुस्तिका छूटी हुई थी, जिसे बाद में लोत्सावा ने देखा। (उसे देखकर उन्होंने) सोचा, "इस (पुस्तिका) में विशिष्ट उपदेश हो सकता है, किन्तु मुझे भारतीय लिपि का ज्ञान नहीं है"—इस चिन्ता में (वे) निचले गाँव के एक पेड़ की छाया में लेट गए, नींद में जाते ही (उन्होंने) सपने में एक लाल वर्णा स्त्री, जो कंगन, पल्ला सहित रत्न मुकुट (आदि आभूषणों) से सजी-सँवरी थी, (जो) दायें हाथ से डमरू बजाती, बायें (हाथ) से मुट्ठीभर फूल की डाली पकड़े हुए थी, ने सामने आकर इस प्रकार कहा—("जिस प्रकार) मकड़ी, (अपनी) लार से अपने ही शरीर को आबद्धकर देने की भाँति (जो व्यक्ति अपने) देश के प्रति आसक्ति (रखता है, वह) मार के जाल में (स्वतः) बंध जाता है। (जो) कोई व्यक्ति सुगति तथा मुक्ति की चाह रखता है, (उसे) उत्तरी दिशा में स्थित कश्मीर जाकर फिर भारत के पूर्व से पश्चिम (सभी जगहों को) जल की भाँति (अपने चरणों से) स्पर्शकर सद्धर्म (रूपी) समुद्र को भोट भाषा में अनूदित करे तो सुखद होगा"—यह कहकर वह अन्तर्धान हो गई।

नींद से जागने पर (जहाँ उनका) पूरा शरीर पानी में भीगे की भाँति पसीने से तर हो गया था, (वहीं उनका) मन भी क्षुब्ध था। (इसके बाद वे) दुःखी मन (अपने)

घर को चले गए। (घर पहुँचकर वे) यह विचार करने लगे—"मेरे लिए डाकिनी ने भविष्यवाणी की है। अब कश्मीर और भारत न जाय तो धर्म और जीवन (दोनों) में विघ्न आने वाला है। (यदि) जाय भी तो जगहों का ठीक से परिचय न होने के कारण माता-पिता के (मन) में व्याकुलता (बनी) रहेगी, जिससे मुझमें कुसंस्कार का संचय होगा।"— इस सोच में (उनका) मन चकराता रहा। (उनकी) माँ (अपने) बेटे के चेहरे को अत्यन्त काला हुआ देखकर कहने लगी—"बेटे! (तुम्हारा) चेहरा काला क्यों है? बीमार हो क्या?"—ऐसा पूछने पर उन्होंने (अपने) माता-पिता को (कुछ देर) पहले डाकिनी (द्वारा) भविष्यवाणी (करने) की कथा सूक्ष्म रूप से बता दी।

**कश्मीर गमन**

इसके बाद माता-पिता, (नाते—) रिश्तेदारों तथा मित्रों (ने मिलकर) विचार-विमर्श किया। पिता ने कहा, "(यदि) इसे (कश्मीर) न भेजा गया, तो धर्म तथा (इसके) जीवन में विघ्न पड़ सकता है (और यदि इसे) भेजा भी गया, तो हमारे दिल को बहुत कष्ट होगा। फिर भी विचार-विमर्श कर, 'इस बार (यह) कश्मीर (तक) ही जाय और पूर्वी भारत न जाकर कश्मीर से लौट आये'—यह तय किया। तब अ-पो (वयोवृद्ध भाई) टशि-चे-मो नामक एक उपासक को स्थान निर्देशक साथी बनाकर अट्ठारह वर्ष की आयु में फग-लो (वराह वर्ष) में वे अपने गाँव से निकल पड़े। छह सौ कौड़ी[8] के साथ बहुत सी सामग्री साथ ली। माँ ने विभिन्न भोज्य पदार्थ तथा पाथेय भी दिया और फटे-पुराने कपड़ों के साथ चल पड़े। जुङति के मोन (यानि कुल्लू) की जगहों से परिचित एक अन्य व्यक्ति को भी साथ लेकर तीनों (कश्मीर के लिए) चल पड़े। माँ ने डोसा-फुग (नामक स्थान) तक आकर (उन लोगों को) विदा किया।

किन्नौर[9] से लाहुल[10] (के रास्ते वे) भिक्षाटन करते आये। तब एक मास तीन दिन में (वे लोग) कारिका नामक गाँव में पहुँचे। जुङति (यानि कुल्लू) के साथी ने पैदल यात्रा से जी चुराने के कारण आगे चलना नहीं चाहा। वहाँ से वे दोनों स्वामी और दास ही चले। तीन दिन की राह तय करने पर (वे दोनों) एक बहुत बड़े पुल पर पहुँचे। वहाँ मार्ग रक्षक के रूप में कर वसूल करनेवाले तीन घराने थे, वे दोनों उन्हें पाँच कौड़ी देकर एक रात डरते-डरते वहीं सोये। अगले दिन प्रातः पुल पार कर आये और एक दर्रे का दो तिहाई मार्ग तय करने के बाद साथी भाई किसी बीमारी से ग्रसित होकर मरणासन्न हो गया। स्वयं (लोच़ावा) भी दुःखी मन थककर (एक स्थान पर बैठ गए)। बैठते ही उन्हें नींद आ गई। उस समय शि-स्किद के तीन सौ डाकू राह में (उन दोनों से) मिलने ही वाले थे, कि तभी स्वप्न में पहलेवाली डाकिनी ने आकर कहा, "उठो बेटे! कल (तुम्हारे) साथी के ऊपर पुल पर वास करनेवाली, धार्मिकों की विरोधी एक यक्षिणी विघ्न डालना चाह रही थी, उसे मैंने हटा दी है। रोगी (अब) शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेगा। (यहाँ) शीघ्र ही डाकू पहुँचनेवाले हैं (अतः तुम दोनों यहाँ से) एक अलग रास्ते से जाकर त्रिरत्न की अच्छी तरह प्रार्थना करो।"—ऐसा कहते ही तत्काल वे नींद से

जाग उठे, बीमार (साथी) का हाथ पकड़कर प्रार्थना करते मात्र चालीस कदम आगे चल, पीछे (मुड़कर) जब देखा तो, पहले (वाली) जगह पर शस्त्रधारी बहुत से डाकू पहुँच गए थे। त्रिरत्न तथा डाकिनी की कृपा से (डाकुओं द्वारा) बिना देखे वे दोनों सही रास्ते (आगे) चलते गये। बीमार साथी भी (कुछ देर बाद) स्वस्थ हो गया। (वे दोनों) डाकुओं के भय से भी मुक्त हो गये। इस तरह वे आनन्द एवं प्रसन्नचित्त हो उस दर्रे को पार कर गये। तीन दिन (मार्ग में उन्हें) खाने को कुछ भी नहीं मिला। (चलते-चलते एक जंगल के बीचों बीच) पदमार्ग से नीचे आने पर चावल का बोझ उठाकर आती हुई बूढ़ी माँ-बेटी से (उनकी भेंट हुई)। हाथ फैलाकर भिक्षा के लिए संकेत करने पर (उन दोनों ने) चार-पाँच मुट्ठी चावल उन्हें दे दिया। उसे पकाकर खाया, तो (उन दोनों को वह) बहुत स्वादिष्ट लगा।

उन्होंने मन में सोचा कि बूढ़ी माँ और बेटी दोनों मेरे लिए माँ और बहिन के रूप में मिली हैं। कृतज्ञता (ज्ञापन हेतु) आगे (मैं) एक सौ आठ स्तूपों का निर्माण करूँगा। (तदर्थ) बुढ़िया को अपने केश के अग्रभाग से कुछ केश देने का (उन्होंने) संकेत किया। बुढ़िया ने अत्यन्त शुक्ल = (शुभ) मना होने से यह संकेत किया, "यदि तुम्हें ज़रूरत है तो (मेरे) पूरे बाल (ही) काटकर ले जाओ।" तब लोचावा ने (अपनी) धर्म (की पुस्तकें रखने के) झोले से हाथी दाँत की अंगूठे भर की महाकारुणिक (आर्यावलोकितेश्वर की मूर्ति) दिखाई (और साथ ही) स्तूप निर्माण का प्रारूप दिखाकर हाथ से संकेत किया कि ऐसा बनाना है। बुढ़िया ने आश्वस्त होकर सहर्ष (अपने) बाल के अग्र भाग से दो तिहाई खण्ड काटकर (उन्हें) अर्पित किया और प्रणामकर (लोचावा को) हाथ से पकड़ अपनी जीभ निकालकर संकेत किया कि यह कट गई है। (यानि भाषायी अज्ञानता के कारण बोल नहीं सकती) और (वह) आँसू बहाती चली गई। लोचावा भी करुणार्द्र हो गए। (उनकी भी) आँखों से आँसू निकल पड़े। बाद में कश्मीर पहुँचने पर (उन्होंने) उस बुढ़िया के (पुण्य) के लिए उसके (द्वारा प्रदत्त) बाल खण्ड को भस्मकर (मिट्टी में उसे मिलाकर) सैंकड़ों (लघु) स्तूपों[11] का निर्माण किया।

### 5. लोचा आदि विद्या अध्ययन

उसके बाद आधा दिन (चलने पर वे) कश्मीर देश की सीमा में पहुँचे। (वहाँ से कुछ आगे चलने पर वे) सात ब्राह्मण घरानेवाले (एक) गाँव में पहुँचे। वहाँ महीने भर रहकर थोड़ी बहुत प्राथमिक भाषा सीखी। तब एक दिन का रास्ता (तय करने पर) एक वृक्ष के नीचे एक योगी, जो नग्न थे और (मनुष्य की हड्डी से बनी) तुती बजा रहे थे, से (उनकी) भेंट हुई। वे योगी लामा (लोचावा) के सिर के चारों ओर तीन बार (अपनी उक्त) तुती को घुमाकर, जंगल में चले गए। बाद में लोचावा ने सुना (कि) वे सिद्धि प्राप्त योगी रत्नसिद्ध थे। उस समय वे उन्हें अधिष्ठित (आशीर्वाद) करने आए थे। तत्काल (उन्हें) पहचान न पाने से (बाद में उन्हें) बहुत पश्चात्ताप हुआ। ऐसा कहा। आगे चलने पर एक नव प्रसूता व्याघ्री मिली। वन से (अचानक) कङलिङ

(तूती) की ध्वनि आते ही वह व्याघ्री किनारे से होकर (आगे) बढ़ गई। (यह सब) कुछ समय पहले मिले (योगी) के संकेत एवं आशीर्वाद का प्रभाव है—(ऐसा) समझ में आने पर (उन योगी के प्रति उनके मन में) विशेष श्रद्धा और भक्ति भाव उत्पन्न हुआ।

वहाँ से आगे चलने पर बहुत से व्यापारियों से (उनकी) भेंट हुई और भिक्षाटन करने पर बहुत सा चावल (भिक्षा के रूप में) उन्हें देखने को मिला। उस रात वे (उन) व्यापारियों के यहाँ ही सोए। अगले (दिन) उनसे आगे का पता अच्छी तरह पूछ करके पूर्वाह्न तक चलकर वे कलचगति नामक गाँव में पहुँचे। (वहाँ) पहुँचते ही कश्मीरी बच्चे एकत्र होकर कहने लगे "इस आदमी को देखो, जिसकी न दाढ़ी है, न मूँछ और शरीर का पहनावा भी पीले रंग का है।"—ऐसा कहते वे तमाशा देखने लगे। उसके बाद वे एक वृद्ध के यहाँ आवास लेकर कुछ दिन ठहरे। एक रोज भिक्षाटन के लिए गाँव में गए। वहाँ वृद्ध से (उनकी) भेंट हुई। उसने (उनकी) हस्तरेखा देखी, बिना कुछ कहे (अपने) घर जाकर, फूलों से भरी एक चाँदी की धूपदानी अर्पणकर (उन्हें) प्रणाम किया। और (उनके) कपड़े का पल्ला पकड़ मंगलादि बहुत प्रशस्ति पाठकर वह बोला, "आप अनेक जन्मों में (पुण्य) सम्भार संचित व्यक्ति हैं। भाग्यवान्! आप इस जन्म में बहुत से धर्मों को जानेंगे और बहुत से प्राणियों का उपकार करेंगे। (और) बाद में सम्यक्संबुद्ध (भी) बनेंगे। उनका नाम ब्राह्मण श्रद्धाकर वर्मा था।

उसके बाद (वे) पाँच सौ युवतियों को धर्मोपदेश दे रहे, पञ्चविद्या स्थानों में विशिष्ट विद्वान गुणमित्र नामक एक पंडित से मिले। पहले ब्राह्मण के द्वारा दी गई चाँदी की धूपदानी को फूलों से भरकर, भेंट के रूप में उन्हें अर्पितकर (उन्होंने) उन्हें प्रणाम किया और (पढ़ाने हेतु) प्रार्थना की। सात महीनों तक (उन्होंने) लोचा (यानि अनुवाद कार्य) का अभ्यास किया। (साथ ही वे वहाँ) शब्द विद्या तथा प्रमाण (विद्या) में (भी) निपुण हो गए। उन्होंने कश्मीर के उपाध्याय धर्म शान्ति से उपसम्पदा ग्रहण की। वज्रधातु की विधि का मण्डल सहित श्रवण किया (और उनका भोट भाषा में) अनुवाद (भी) किया। (उनसे) अनेक धर्म (ग्रंथों) का श्रवण तथा अनुवाद किया। (उन्होंने) वर्णसूत्र (नामक एक व्याकरण ग्रंथ की भी) रचना की।

उसके बाद वहाँ पूर्व दिशा में छः दिन के रास्ते में पड़ने वाला तमलासन नामक नगर में, पञ्च- विद्यास्थानों में विज्ञ सुविख्यात एक पंडित निवास करते हैं—ऐसा उन्होंने सुना। पहले के गुरु को विदाई प्रणाम कर (लोचावा जी उस ओर) चल पड़े। रास्ते में उड़ते हुए गृध्र की छाया की भाँति द्रुतगामी एक योगी से (उनकी) भेंट हुई। (वे) जंघाचारिकसिद्धि[12] से सम्पन्न योगी प्रतीत हुए। (उनका) चरण शिरोधारणकर (लोचावा ने उनसे) निवेदन किया—"मैं बहुत दूर चल फिर नहीं सकता हूँ, मैं एक घुमक्कड़ हूँ, मार्ग व्यय में (जो पास था), सब कुछ समाप्त होने के कारण दान दक्षिणा के (रूप में प्रदान करने के लिए मेरे पास) कुछ भी शेष नहीं बचा है। अतः आप महती कृपाकर मुझे जंघाचारिकसिद्धि की दीक्षा प्रदान करें।" "तुम (बहुत) दूर के हो, दीक्षा

(तुम्हें) दूँगा, पर यह जंघाचारिकसिद्धि डाकिनी धर्म है।" अधिष्ठान और गणपूजा के बिना मैं तुम्हें नहीं दूँगा।"–ऐसा (योगी ने) कहा। (वे) योगी के सेवक बनकर (उनके साथ) चले। भीनधार नामक नगर पहुँचने पर (वे) गणपूजा की सामग्री जुटाने में लगे। पूरी होने पर (उन्होंने योगी से पुनः दीक्षा के लिए) निवेदन किया। योगी ने, "अब (दीक्षा) दूँगा" कहकर अधिष्ठान और गणपूजा की। लोच़ावा ने कपड़े का एक थान अपने गले में बाँधकर दक्षिणा के रूप में काय, वाक्, (तथा) चित्त (योगी को) चढ़ा दिया। चिन्तामणि जंघाचारिक सिद्धि की दीक्षा पाकर (वे) तमलासन नाम के नगर को चले गए।

### 6. अन्य आचार्यों से विद्या ग्रहण

तमलासन नगर में (उन्होंने) महापंडित श्रद्धाकर वर्मा[13] का दर्शन किया। धर्म (उपदेश) के लिए प्रार्थना करने पर (उन्होंने) अनुमति दे दी। दो वर्ष में योग तंत्र की साधनाविधि और (उससे सम्बद्ध) अनेक उपदेशों का श्रवण किया। श्री चक्रसम्वर पञ्जिका भगवद् अभिसमय नामक तंत्र, साधनाविधि आदि गुह्यतंत्र एवं उससे सम्बद्ध अनेक साधना विधियों का श्रवण और अनुवाद किया। उपाध्याय बुद्धश्री से भी (उन्होंने) योगतंत्र के पूरक और बहुत से धर्म (ग्रंथों का) श्रवण तथा मनन किया। उसके बाद जैसे पहले स्वदेश लौटने की प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार वापस जाने के विषय में सोचा। (उस) रात स्वप्न में "भोट देश का एक आदमी समुद्री द्वीप से बहुत रत्न प्राप्तकर बैठा है, (किन्तु) एक चिन्तामणि रत्न पीछे छूटा पड़ा है—वह (रत्न) भदन्त नरोपा (=नाड़पाद)[14] के हाथ में है।"–ऐसा (डाकिनी ने) कहा। प्रातः नींद से जागने पर (उन्होंने) पंडित श्रद्धाकर वर्मा को (उक्त) वृत्तान्त सुनाया। श्रद्धाकर वर्मा ने कहा– "(यदि) ऐसा है, तो भदन्त नरोपा (=नाड़पाद) के पास जाना चाहिए। उनके पास एक ही जीवन, एक ही शरीर में बुद्धत्व (प्राप्त करानेवाली) धर्म महामुद्रा के विषय में बहुत सी जानकारी है"– गुरु जी की आज्ञा मिलने पर वे सोचने लगे, "सिद्धि का मूल गुरु की आज्ञा, कहा जाता है। (साथ ही) शुभ स्वप्न का दर्शन भी हुआ है। अब जाना चाहिए।" (ऐसा मन ही मन निर्णयकर वे) उत्तर दिशा में (स्थित) श्री फूलहारी नामक विहार (की ओर) चल पड़े।

(वहाँ पहुँचकर) भदन्त नरोपा (=नाड़पाद) का शीघ्र दर्शन पाकर (उन्होंने उनसे) आशीर्वाद (तथा) अववाद (=उपदेश) प्रदानार्थ प्रार्थना की और अनुमति भी मिल गई। उनसे सहज, गम्भीर, सर्वप्रपञ्चों से रहित तथता विशिष्ट सहज अववाद का निर्देश एवं अनेक अधिष्ठानों का श्रवण किया। उसके बाद अववाद, अधिष्ठानों का कार्य सम्पन्न होने पर (गुरु) नरोपा को विदाई नमस्कार करके पुनः वापसी के मार्ग में पंडित कमलगुप्त का (उनको) दर्शन हुआ। (उनसे भी उन्होंने) बहुत से अववादों का श्रवण किया। पहले अपने गाँव यानि घर में देखी उस भारतीय पुस्तिका में डाकिनी सुवर्णप्रभावती की एक गम्भीर साधना विधि थी, पंडित (कमलगुप्त) उसके ज्ञाता थे,

लोचावा ने उनसे वह विधि भी सीखी (इस साधना से उन्हें ज्ञान हुआ कि) पहले भविष्यवाणी करनेवाली डाकिनी वही थी। तब से लेकर उसने ही माँ तथा बहिन (के रूप में उनकी) सहायता की। उसके बाद कश्मीर (पहुँचने पर, प्रवास में) कितने वर्ष बीते हैं—हिसाब लगाया तो जाना कि सात वर्ष बीत चुके हैं। अब माता-पिता का दर्शन करने जाना चाहिए—(ऐसा) विचारकर (उन्होंने सारे) अववादों को पीले भोजपत्र पर लिखकर (उन्हें) भारतीय पुस्तकों का आकार देकर (घर) लौटना चाहा तो। तभी उन्हें (डाकिनी द्वारा) सबसे पहले भविष्यवाणी में कही गई बात 'भारत के पूर्व से पश्चिम तक नदी के समान विचरण करो'—का स्मरण हो आया। तब (वे अपनी सारी) पुस्तकें श्रद्धाकर (वर्मा) के हाथ सौंपकर पूर्वी भारत चले गए। यहाँ तक कश्मीर में रहकर धर्म अध्ययन एवं अनुवाद करने का वृत्तान्त है।

### 7. सद्धर्म का अनुवाद

जंघाचारिक सिद्धि द्वारा वे शीघ्र (ही) पूर्वी भारत पहुँचे। (वहाँ पर उन्होंने) भारतीय उपाध्याय जिनमित्र पाद, उपाध्याय ज्ञान, उपाध्याय शीलेन्द्र बोधि (आदि) बहुत से उपाध्यायों तथा पंडितों से धर्म (ग्रंथों) का अध्ययन (एवं) उनका भोट भाषा में अनुवाद किया। सूत्र, विनय अभि (धर्म), प्रातिमोक्ष, त्रिशतिका बृहद् जिनजननी (=शत साहस्रिका प्रज्ञापारमिता), मध्यम जिनजननी (=पञ्चविंशतिका साहस्रिका प्रज्ञापारमिता), अष्टादश साहस्रिका, अष्टसाहस्रिका, महाकारुणिक (आर्यावलोकितेश्वर) से सम्बन्धित, अनेक ग्रंथों का (भोट भाषा में) अनुवाद एवं सम्पादन किया। अन्य (उन्होंने) अपरिमित सूत्र एवं तंत्रों का भी उपदेश ग्रहण किया। महाकारुणिक से सम्बद्ध अनेक धर्मग्रंथों का (भी भोट भाषा) में अनुवाद किया। अमुक उपाध्याय तथा पंडित से अमुक (धर्मोपदेश) ग्रहण किया, इत्यादि का विवरण यहाँ विस्तार भय से नहीं लिखा गया है।

पूर्वी भारत में वे गुरु महानुवादक भन्ते ज्ञानसेन के नाम से प्रसिद्ध हो गए। तब (वे) (पूर्वी) भारत से कश्मीर आए। (वहाँ) पंडित श्रद्धाकर वर्मा से (अपनी उन) सारी पुस्तकों को लिया। और (उनमें से) जितनी (वे स्वयं) उठा सकते थे, (उतनी) लेकर शेष को (वहीं) श्रद्धाकर वर्मा के पास रखकर (स्वदेश) चल पड़े। इस बीच भारत और कश्मीर में रहते दस वर्ष बीत गए थे।—ऐसा (लोचावा ने) कहा। कश्मीर से क्यु-वङ को जंघाचारिक सिद्धि द्वारा चलकर छह दिन में पहुँचे, तो पिता जी नहीं थे, उनका पहले ही देहान्त हो चुका था। "पहले कश्मीर से लौट नहीं आया" यह सोचकर (उन्हें) पश्चात्ताप हुआ—यह कहा। (इसके बाद उन्होंने अपने) पिता के लिए दुर्गतिपरिशोधन के सात मण्डलों का निर्माण किया।

उसके बाद वे पु-हङस नामक स्थान पहुँचे, तो (वहाँ) एक गेशे तृणाग्र भाग पर पर्यङ्कबद्ध बैठे मिले। सभी (स्थानीय) लोग आश्चर्यपूर्वक उनके प्रति नतमस्तक थे। लोचावा ने देखा कि यह एक दूपे दूकर (पेकर) (नामक अमानुषी की) ऋद्धि है। (वे)

एक महीने की गम्भीर साधना के बाद उसके पास पहुँचे। वहाँ जाकर (उन्हें) तर्जनी (मुद्रा) दिखाई, तो वे उल्टे सिर ज़मीन पर गिर पड़े। इसके बाद (स्थानीय) लोग लोत्सावा के प्रति श्रद्धावान हो गए।

इसके बाद महागुरु ल्ह-ल्दे-बृत्सन[15] (ल्ह-दे-त्सन) ने पंडित प्रज्ञाकर, श्रीमित्र, पंडित शुभशील आदि बहुत से शीलवान विद्वानों को आमन्त्रितकर उनसे मध्यम (तथा) विस्तृत (प्रज्ञा) पारमिता आदि ग्रंथों का (भोट भाषा में) अनुवाद करवाया। संक्षेप में पचहत्तर पंडितों से अनेक सद्धर्म (ग्रंथों) का अनुवाद करवाया तथा श्रवण किया।

## 8. विभिन्न स्थानों में विहारों का निर्माण

महागुरु ल्ह-ल्दे (ल्ह-दे) ने (लोत्सावा को) राजपुरोहित और वज्राचार्य के रूप में नियुक्तकर पु-ह्रङस (नामक) स्थान उन्हें भेंट किया। यह स्थान भेंट करने पर लोत्सावा ने त्रिरत्न के सत्कार करने के रिवाज़ के मुताबिक पु-ह्रङस के जेर (नामक जगह) से लेकर होपुलङका के बीच में एक सौ आठ विहारों का निर्माण करना भी स्वीकार किया। उसके बाद महागुरु ल्ह-ल्दे ने ख्वछर के विहार का निर्माण करने को कहा। उसे पूरा कर जब वे गुगे पहुँचे, तो ल्ह-ब्ल-म-ये-शेस-ओद (गुरुदेव ज्ञानप्रभ) ने मृथो ल्दिङ (थो-दिङ[16]) नामक विहार (जो बारह उपद्वीप के व्यूह के रूप में है) और मङयुल (वर्तमान लद्दाख) के अर- भा के विहार का निर्माण किया। इन तीनों की नींव एक ही दिन में रखी गई। इस तरह बहुत से विहारों का निर्माण किया। (साथ ही) बहुत से सद्धर्म (के ग्रंथों) का (भोट भाषा में) अनुवाद भी किया। इस प्रकार गुरु महा लोत्सावा पु:ह्रङस तक पधारे।

ब्लो-छुङ-लेगस-पइ-ब्लो-डोस (लो-छुङ-लेगस-पइ-लो-डोस=कनिष्ठ अनुवादक सुमति) का अनुवाद (कार्य) साक्या मनछङ् में रहा।

माँ के स्वास्थ्य तथा दीर्घायु के लिए (लोत्सावा ने) अमितायु के सात मण्डलों का निर्माण किया। तब से लेकर माँ अठारह वर्ष (और) जीवित रहीं। इसके बाद पुहङस का ख्व-छर, गुगे का थो-दिङ, मङयुल का अर—इन तीनों विहारों का प्राण प्रतिष्ठा महोत्सव किया। बाद में पु-ह्रङस वाले कहने लगे कि गुरु महालोत्सावा ने यहीं रहकर विहार बनवा (उसकी) प्रतिष्ठा की। गुगे वाले कहने लगे कि (लोत्सावा) यहीं रहे। (इस तरह) मङयुलवाले भी कहने लगे कि वे यहीं रहे। (बाद में) गुरु लोत्सावा से पूछा गया तो "उन तीनों में मैं मौजूद था—यह सच है" कहा। तब गुरु महालोत्सावा को ल्ह-ब्ल-म-ये-शेस-ओद (=गुरुदेव ज्ञानप्रभ) ने कहा "गुरु महालोत्सावा! (आप) कश्मीर से (सद्धर्म के) ग्रंथों तथा कुशल शिल्पकारों को लेने के लिए कश्मीर जाएँ।" (लोत्सावा ने उनकी बात) स्वीकार कर ली। ल्ह-ब्यङ-छुब-सेमस-दूपअ (ल्ह- जङ-छुब-सेमस-पा) (= देव बोधिसत्त्व) ने कहा, "गुरु महालोत्सावा को (कश्मीर) भेजने के लिए घोड़ा, हाथी भेंट किया जाए तो भारत (जाने का मार्ग अत्यन्त) संकरा होने से निकल (यानि पार) नहीं कर पाएँगे[17] (और यदि) सोना, चाँदी दिया जाए, तो (भी) बहुत दूर होने

के (कारण) उठा नहीं पाएँगे। (इसलिए) प्रबुद्ध पन्द्रह बालकों को सेवक (के रूप में उनके साथ कश्मीर) भेजा गया। (साथ ही) दक्षिणा के रूप में अष्टविध मूल्यवान अस्थियाँ दीं।

(उक्त लोगों के साथ लोचावा) दुबारा कश्मीर गए। वहाँ पहुँचने पर गुरु महालोचावा सोचने लगे, "बहुत से धर्मों को जानकर (और उनके द्वारा जो) जीवों का अर्थ साधन करने को मिला— (ये सब) माता-पिता की कृपा से है। (अतः) कश्मीर में ही पिता के (पुण्य) के लिए विशिष्ट (पूजा) स्थान (यानि मूर्ति) निर्माण करना चाहिए।" (इस निमित्त वे घर से) बीस सेर-स्ङ (सुवर्ण मुद्रा) (अपने साथ) लेकर चले थे। कश्मीर में (एक दिन) पीतल माँगने (निकले, तो उन्हें) बहुत (सारा पीतल) मिला। (फिर उन्होंने) भीधक नामक एक कुशल शिल्पकार से पिता के शरीर के बराबर महा कारुणिक (आर्यावलोकितेश्वर) की एक मूर्ति बनवाई। गुरु श्रद्धाकर वर्मा से (उस मूर्ति की) प्राणप्रतिष्ठा करवाई। (अपने) देश से लाई गई बीस सुवर्ण मुद्राओं में से पाँच के द्वारा गुरुजी की पूजा की। पाँच सुवर्ण मुद्राओं से प्राणप्रतिष्ठा उत्सव का आयोजन किया और पाँच सुवर्ण मुद्रा से मूर्ति की सामग्री जुटाई। एक सुवर्ण मुद्रा से मजदूर लिया। रथ पर मूर्ति को कश्मीर से (अपने देश को) लाते समय महासंगल नामक पुल के संकरे मार्ग पर मूर्ति का हाथ चट्टान से टकरा जाने के कारण (उसकी) अनामिका का अग्रभाग टूट गया। (अपने) देश (यानि गाँव) से चलकर तेरह महीने के बाद मूर्ति (के साथ) वे पुनः अपने गाँव पहुँचे। (क्युवङ को पूजा स्थल के योग्य) न देखकर मूर्ति को ख्वचे गोखर (नामक स्थान) में ले गए। (वहाँ पर) मूर्ति को साठ भिक्षुओं के संघ को सौंप दिया और सामयिक पूजा (हेतु) सामग्री भी जुटाकर दी।

"गुरु लोचावा को कश्मीर में शेष धर्म (ग्रंथों) का अध्ययन एवं शिष्यों का नेतृत्व करते हुए छह वर्ष बीत गये। छह वर्षों के बाद (वे) बत्तीस शिल्पकारों के साथ स्वदेश पहुँचे। उसके बाद महादेव ये-शेस-ओद (=ज्ञान प्रभ) के दर्शन के विचार से (थो-दिङ) आने पर कश्मीर से आमन्त्रित अनेक पंडितों से (उनकी) भेंट हुई। महादेव (ये-शेस-ओद) ने कहा, "लोचावा रिनछेन जङ्पो! (मैं) आपको निमन्त्रण भेजनेवाला था, पर आप (स्वयं) आ गये—यह अच्छा हुआ। अब यहाँ इस पङख्यु के भिक्षु को भी आपसे अनुवाद कार्य सिखाना है। उनके कहेनुसार उन्होंने उसे अनुवाद (कार्य) सिखाया और वे शब्द तथा प्रमाण विद्या में निपुणता को प्राप्तकर (बाद में) पङख्यु लोचावा के नाम से (ख्यात) हुए। उन दोनों गुरु शिष्यों ने उन पंडितों के साथ भी बहुत से अनुवाद किये।

इसके बाद (लोचावा) माँ के देहान्त होने पर क्युवङ चले गये। और (वहाँ उन्होंने) श्रीदुर्गतिपरिशोधन के तीन मण्डलों का उद्घाटन किया। माँ के पुण्य के लिए (उन्होंने) एक विहार का निर्माणकर (प्राण) प्रतिष्ठा उत्सव भी किया। ल्ह-ब्ल-म-ये-शेस-ओद (=गुरुदेव ज्ञानप्रभ) के बीमार पड़ जाने पर (वे) जल्दी में (उनसे)

मिलने निकले, किन्तु बीमारी के अधिक बढ़ जाने से (वे उनसे) मिल न पाये।[18] (अर्थात् उनका देहान्त हो गया) उनके मृत्यु संस्कार पूजा के रूप में दुर्गतिपरिशोधन आदि लोचावा ने स्वयं किया। दक्षिणा के रूप में महादेव ल्ह-ल्दे ने महागुरु बोधिसत्त्व के इक्कीस छोटे प्रदेश (लोचावा) को भेंट किए। (उन) इक्कीस छोटे प्रदेशों में पूजा के लिए इक्कीस स्थान (बनवाये और उनमें) प्रत्येक (स्थान) में एक ही साल के भीतर तीन-तीन प्रतियाँ धारणी संग्रह की, सात-सात प्रतियाँ शत-साहस्रिका प्रज्ञापारमिता की तथा अन्य काय, वाक्, चित्त के प्रतीकों (यानि मूर्ति, ग्रंथ, स्तूप) की स्थापना की और उनके पठन-पूजन आदि की भी (समुचित) व्यवस्था की।

### 9. इक्कीस छोटे प्रदेशों में पूजन व्यवस्था

ख्वचे गोखर में देवालयों के निर्माण का विवरण (इस प्रकार) है—फ-स्गो (फ-गो) पिता से सम्बद्ध तेरह भाइयों ने तेरह देवालयों के निर्माण हेतु विचार विमर्श किया। लोचावा ने सोचा अपने देवालय की नींव (उन सबसे) एक दिन पहले ही डाल दी जाए, तो बाद के (अन्य) सभी देवालय स्थिर (यानि दृढ़) रह सकेंगे। यह मानकर लोचावा ने अपने विहार की नींव (उन लोगों के विहारों की नींव से) एक दिन पहले डाल दी, तो उन तेरह भाइयों ने ईर्ष्यावश लोचावा के विहार से ऊँचे अपने विहार कर दिये। उसके बाद शिल्पकारों को अलग-अलग बाँटकर निर्माण कार्य पूर्ण किया। निर्माण हो जाने पर प्राण प्रतिष्ठा आदि सब कार्य महालोचावा ने ही सम्पन्न किये। उन्होंने सोचा कि क्युवङ रदनि नामक स्थान (मेरी) अपनी जन्म भूमि है। (अतः) वहाँ एक पर्वत सरीखे विहार का निर्माण करना है। पर (वहाँ की) जलमति नामक कान्तार स्थित नाग (जाति की) राक्षसी प्रमुख चार बहिनों के ईर्ष्या करने से रदनि में, जो आठ स्थविर (पहले से ही) रह रहे थे, वे आठों नाग रोग (यानि कुष्ठ रोग) से ग्रस्त हो गये थे।

(उस वर्ष की) सर्दियों में ग्यम-शुग नामक स्थान में साधना करके वसन्त ऋतु में (वे) क्युवङ आये। (वहाँ) तीन द्रोण बीज खपनेवाले एक खेत में श्री गुह्यसमाज के मण्डल का निर्माण किया। उसके मध्य में एक बड़ा सा होम कुण्ड बनवाकर (उन राक्षसियों को विनीत करने हेतु उन्होंने) हवन आरम्भ किया। इस पर जलमति प्रमुख चारों बहिनें साक्षात् प्रकट हो सामने आयीं। तब गुरु लोचावा ने (अपने) सहयोगियों से कहा, "थोड़ी देर के लिए ढोल[19] (आदि वाद्ययन्त्र) बिना बजाये अपनी-अपनी जगह पर ही बैठे रहो।" ऐसा कहकर महालोचावा उस खेत के ऊपरी किनारे गये और (वहीं पर) उन (बहिनों) ने अपना प्राण-हृदय (उन्हें) अर्पण किया। (लोचावा ने) उन (बहिनों) को शपथ में आबद्ध किया। (और उन बहिनों ने भी) बुद्ध शासन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा ली। विशेषकर जब राक्षसी जलमति ने अपने मस्तक के ऊपर का केश कटवाया, तो उसकी (बाल की) लम्बाई धनुष (यानि आठ हाथ) भर निकली, जिससे बूसे (उच्चा. से) नामक वस्तु से बनी छोटी-बड़ी तीन पेटियाँ भर गईं। (उन्हें लोचावा ने) रदनि के विहार की नींव में निधि के रूप में दफना दिया। प्राणहृदय अर्पण करने

पर उसका गुह्यनाम (नम- मूखह-द्रि-मेद-म) (नमखा डिमेद-मा=गगन विमला) रख दिया गया। (और उसे) रदनि के पद्मा-मद-जुङ (=अद्भुत पद्म) विहार की रक्षिका के रूप में नियुक्त कर दिया। उसके लिए एक पूर्ण साधना विधि की भी रचना की। विहार में श्री गुह्यसमाज के देवगण का भी निर्माण किया।

जलमति (आदि इन) चारों बहिनों में से लो-दङ-मा-मन-डोगमो को जर आदि ख्वचे के विहारों की रक्षिका के रूप में नियुक्त किया। उससे छोटी चन-डोग-मो-डो-मुर-मा को ग्यु-लङ-खङ-द्मर (ग्यु-लङ-खङ-मर) (नामक विहार) की रक्षिका के रूप में और उससे छोटी बुदुद-ब्रोग-मो-हस्रोग-मुर-म (दुद-डोगमो-स्रोग मुरमा) को सुमनग[20] के देवालय (यानि विहार) की रक्षिका के रूप में नियुक्त किया। क्लु-हब्रोग-मो-स्मन-जलमति (लु-डोम-मो-मन-जलमति) उन (बहिनों) में सबसे छोटी थी। र-स्लग-चन (र-लग-चन) नामक (एक अमानुषी) उपासक को शपथ में आबद्धकर (उसे) कार्यकर्ता बना रोङ-छुङ नामक (प्रदेश) के विहारों के धनरक्षक के रूप में नियुक्त किया। वास्तव में यह विघ्नों का राजा विनायक ही थे। र-स्लग-चन (र-लग-चन), द्पे-कर (पेकर), द्रो (डो), ल्चगस-बेर (चगस-बेर), ये सब उन्हीं के नाम के पर्याय हैं। जल-चे-म-ल (जल-चे-माला), दोर्जे-द्र-ब-म (दोर्जे डावामा), ग्लोग-ह्ग्युर (लोग-ग्युर- मा), और र-स्लग-चन (र-लग-चन) सपरिवार इन चारों से सम्बद्ध एक शम साधना विधि की रचना की। (साथ ही) पाँडु वर्णवाली नागिन, जो मार वधु परिवार से परिवृत्त होती है, की चण्ड साधना विधि की भी रचना की।

रदनि के पद्म-स्मद-ह्ब्युङ (पदमा-मद-जुङ=अद्भुत पद्म) नामक विहार में काय, वाग्, चित्त से सम्बद्ध (जो) अपरिमित पूज्य वस्तुएँ रखी गई हैं, उनमें विशेष रूप से हाथी दाँत से निर्मित महाकारुणिक (आर्यावलोकितेश्वर) की प्रतिमा, जो ख्युद (=वितस्ति) भर की है, अत्याकर्षक है। दूसरी बोधिवृक्ष की लकड़ी से बनी श्रीहेवज्र की एक अद्भुत प्रतिमा और भारत के किसी वृक्ष (विशेष) की छाल पर भारतीय लिपि में लिखित श्री गुह्यसमाज की एक (तांत्रिक) पोथी भी रखी गई है।—इन तीनों को विहार से हिलाना (यानि बाहर निकालना) जन निकाय के लिए बुरा है। (—ऐसा माना गया है)। अन्य ताम्र एवं पीतल की बनी मूर्तियाँ कुल मिलाकर उन्नचास हैं। पोथियों की संख्या में तीनों पिटक पूर्ण रूप में हैं। प्रज्ञापारमिताओं में मध्यम तथा विस्तृत प्रज्ञापारमिताएँ पूर्ण हैं और सम्पूर्ण अठारह युम-स्रस (=जननी, पुत्र) के साथ अष्टादश साहस्रिका (प्रज्ञापारमिता) की दो प्रतियाँ, अष्ट साहस्रिका की पाँच प्रतियाँ—इस प्रकार कुल मिलाकर 468 पोथियाँ विद्यमान हैं।

पूजा-उपकरणों में पाँच छ-लङ, बजानेवाले तीन शंख, दो सैट ताम्र तुरही, चार सेट बुदुन-छर (=जलदानपात्र), उभरी चित्रकलाओं से युक्त चार बड़ी और दो छोटी बलि[21] परात, बिना उभरी चित्रकला की दो परात, 68 प-क्रि-चे (पटि चे), तीन ह्ज-गो (जगो), बाईस रिल-ब (=कमण्डलु), (एक) ताँबे का स्लङ-ङ (=तसला), सात छलनी,

उभरा चित्र वाला फग-डम-दो, पाँच छोस-दुङ, विशेष ताम्र पात्र दो, बूसे (की बनी) पेटिका दो, काष्ठपात्र दो, पतेप पच्चीस, सात बड़े कड़छुल उभरा चित्रवाला कड़छुल एक, तीन काष्ठ मण्डल, दो जोड़ी घंटी, पीतल से निर्मित उभरा चित्रवाला सुङ-मङ-जेस-कोग एक— ये सब रदनि स्थित पद्मा-मद-जुङ (=अद्भुत पद्म) विहार में रखे हैं।

कनिष्ठ अनुवादक स्तोन-प-लेगस-पइ-शेस-रब द्वारा लोचावा के विहारों के लिए प्रदत्त पूजा उपकरणों में (धर्म विषयक) चौदह पोथियाँ, तीन छलङ, एक जोड़ी ताँबे की तुरही, दो कमण्डलु, एक जोड़ा दुन-छर (=जलदान पात्र), जबस-स्तेगस वाली पीतल की परात एक, पीतल का एक दीपदान पात्र, (आदि) हैं। इन पूजा उपकरणों की भेंट के साथ (उन्होंने उन विहारों की) बड़ी सेवा की। विशेषकर लोचावा जब बाद में कश्मीर जा रहे थे, उस समय गुरुदेव ये-शेस-ओद (=ज्ञानप्रभ) ने लोचावा (की सेवा में) पाँच मेधावी बालक, पाँच सेवक, पाँच विश्वास (पात्र) कुल मिलाकर पन्द्रह परिचारक साथ भेजे। साथ ही (उन्होंने लोचावा को) आठ भूखण्ड दक्षिणा के रूप में दिए। उस समय कनिष्ठ अनुवादक लेगस-पइ-शेस-रब (सुप्रज्ञ) (लोचावा के) अत्यन्त निकट तथा विश्वस्त (व्यक्ति) रहे। उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर (लोचावा की) काय तथा वाक् से सेवा की। कृतज्ञता (प्रकट करने) के लिए चोग-रे, गो-गैर, कु-शु (की सीमा) से ऊपर ति-म-ल (तिमला),के तीनों निचले भाग, खदर के नदी (प्रदेश) से (कटी सीमा तक), (इसी प्रकार) पूर्व में ते-थङ से कटी सीमा तक, दक्षिण में हिमगिरियों से कटी सीमा तक, पश्चिम में स्ङ-म-म्योङ (ङ-म-ओङ) (नामक) प्रदेश से कटी सीमा तक, उत्तर में नदियों (ब्रङ-पो) से कटी सीमाओं तक के (मध्य में स्थित) अच्छे (यानि उपजाऊ) प्रदेश, जो ह्ब्रोङ (डोग) (=समृद्ध पशुपालक) प्रजावाला है, को गुरुदेव ने मे-द्बोन (मे-बोन) (=पितामह से लेकर पौत्र तक) की (राजवंशीय) मुहर लगाकर लोचावा के हस्ताक्षर युक्त (आदेश) के साथ कनिष्ठ अनुवादक लेगस-पइ-शेस-रब (लेगस-पइ-शेरब) को सौंप दिए। इसलिए इन प्रदेशों पर छोटे बड़े किसी भी (प्रशासनिक) निकायों का न कर लगेगा, न (उन पर किसी प्रकार का) आदेश लागू होगा और न ही (किसी के द्वारा) उनका उल्लंघन (ही) किया जाएगा।

पाँच मेधावी बालकों में से दो का (कश्मीर प्रवास के दौरान) गर्मी से देहान्त हो गया। (बाकी) मङ-र्येर के अनुवादक जङ-छुब-शेस-रब (=बोधिप्रज्ञ), र्म के अनुवादक द्गे-ब्लो (गे-लो=कुशलमति), ह्जङ (जङ) के अनुवादक रिन-छेन-ग्जोन-नु (रिनछेन जोन-नु=रत्नकुमार)—ये तीन हैं। ये तीन भी लोचावा के वरिष्ठ पुत्र (यानि शिष्य) रहे हैं। अतः मङ-र्येर के अनुवादक जङ-छुब-शेस-रब को तियग, र्म के अनुवादक गे-लो को रि-ठि (नामक प्रदेश दिये गये), जङ (प्रदेश) के अनुवादक रिनछेन जोन-नु को छदमेद (नामक प्रदेश) जिनमें मङ क्रि (मङ-टि) के शिखर से नीचे शिङ-ह्गस से ऊपर, जो सामने से चट्टानीय कोणों से कटा है, ऊपरी भाग गिरिकन्दराओं से युक्त है, दिया।

रदनि में रक्षिका[22] की पूजा सामग्री के लिए आधा खल[23] सत्तू, एक खल रुमा[24] (=छङ हेतु अनाज) द्रोण भर मक्खन, क्यंङ (क्यङ) का लग-प-चिग (क्यङ नामक जंगली जानवर की एक अगली टाँग का माँस) आदि वार्षिक कर के रूप में अदा करना होता है। और भी, महालोचावा के वंशज हो अथवा उनकी प्रजा किसी को भी आवागमन के लिए (वाहन आदि) यात्रा की सुविधा देनी होती है। और भी, पु-हङस का ज्येर-प (जेर-पा), गोखर, पुर-खर, बोरि, गूयङ-स्कुर (यङ-कुर), तियग, छ़दमेद, स्ने-हु (ने-हु), जे-वङ, जोलिङ,[25] ग्युं-लङ (ग्युलङ), रो-पग, चोग-रो, रि-खि (रि-ठि), हङ-त्रङ[26], ल-रि, र्त-फो[27] (त-फो), शङस[28] ख्र-रङ (खरङ), द्रिल-छुङ (डिल-छुङ) रिग-चे[29] इन इक्कीस छोटे प्रदेशों में पूजा हेतु एक-एक विहार और उनमें सांगोपांग पूजा-उपकरण (भी) रखे हैं। संक्षेप में पु-हङस (पु-हङ) के ख्व-ठर से जेर तक नीचे और होपु-लङका[30] से ऊपर कुल एक सौ आठ विहारों का निर्माण किया। विहारों के निर्माण (क्रम) में एक सौ सात पूर्ण होने के बाद द्रिल-छुङ (डिल-छुङ) (नामक स्थान) में एक (छोटा सा) विहार, जिसे द्रोण के बराबर कहा जाता है, के निर्माण के साथ एक सौ आठ (की संख्या) पूर्ण हो गई। (व्यय आदि का) हिसाब भी उसके साथ ही सम्पन्न हो गया। अन्य, प्रत्यन्त के विनेय जनों के लिए (निर्मित) विहारों में से दक्षिण का देगर, दूपग (पग), द्रुग-फग (डुग-फग) का मोन, ङ-रा का कनम (कानम) रोङ छुङ का स्पु (पु) ये प्रमुख हैं। संक्षेप में रोङ में निर्मित ये सभी विहार भी गुरु महालोचावा (स्वयं) के द्वारा ही बनाये गये हैं। इस प्रकार उन महालोचावा की दस धर्म चर्या प्रतिदिन बिना क्रम टूटे चलती रहती थी। (उनके द्वारा) निर्मित स्तूपों की कोई संख्या नहीं है।

महालोचावा ने होपु से तीन[31] जलसर्प पकड़कर (उन्हें) बूसे (से) (=गेंडे) (की खाल की बनी) पेटिका में डाल (साथ ले जाने की विधि) सिखाकर (अपने) परिचारकों को 'क्युवङ के ऊपरी भाग में जब तक न पहुँचे (तब तक) इस (पेटिका) का मुँह (यानि ढक्कन) मत खोलना' —ऐसा कहा। (सर्पों को) ले जाते समय परिचारकों ने सुमनम के द्रति (डति) में (पेटिका का मुँह खोला) तो (उससे) एक बड़ा नीला जलसर्प निकल भागा और वहीं (यानि उसी स्थान पर) पानी निकल आया। पुनः दूसरे को पकड़कर 'इसे कल की भाँति न करके क्युवङ के ऊपरी किनारे नहीं पहुँचने तक मुँह न खोलना'—कहकर भेजा पर सर्प के (प्रभाव) से परिचारक का चित्त परिवर्तन हो गया, जिस कारण स्पु के तुगथङ[32] (नामक स्थान में पुनः पेटिका का) मुँह खोल दिया गया, तो एक (जलसर्प) भाग गया। तब गुरु महालोचावा ने कहा, "अब हम लोग दो बार असफल हो चुके हैं। यह जनता के भाग्य में नहीं है। वे (सब) एक ही स्थान पर निकले होते, तो (उस स्थान पर) सौ घरोंवाला एक नगर बस जाता।" (अब) यह जगह अकाल तथा कम जीविका वाला गाँव के अतिरिक्त नहीं होगा।

**10. विशिष्ट साधना**

सामान्यतया (लोचावा ने) पु-हङस के जेर से नीचे होपु-लङका (के बीच विभिन्न

स्थानों में) अनेक साधनाएँ की हैं। विशेषकर (वे) ग्यम-शुग (नामक स्थान) में अधिक (समय तक) रहे। ग्यम-शुग में रहते समय परिचारक भेजकर पु-हङस के ख-छर से खाद्य सामग्री लेते थे। (परिचारक) रात खुलने के बाद (ग्यम-शुग से चलकर पुनः विहार में) सुबह नाश्ता के पहले ही कई बार पहुँच जाता था—ऐसा कहा जाता है।

ऐसा करते हुए (जब वे) 87 वर्ष की अवस्था में पहुँचे थे, (तब) (गुगे के) राजघरानों ने जोवो ल्हचिक[33] (अतिशा दीपंकरश्रीज्ञान) को आमन्त्रित किया और (वे) मनम में रह रहे थे। गुरू लोच्चावा ने सोचा, "जोवो से हमारा कोई (विशेष) सम्पर्क नहीं है, फिर भी वे भारत के एक सिद्ध एवं बड़े आदमी हैं। मैं भी महानुवादक के रूप में ख्यात तथा भोट देश का एक बड़ा आदमी माना जाता हूँ। अतः उनका महद् स्वागत-सत्कार करने का भार मुझ पर आता है।" (अतः उन्होंने) अपने पूजा स्थान ल्कियन-रि-ग्लिङ (किन-रि-लिङ) में जोवो (अतिशा) को आमन्त्रितकर (उनका) स्वागत किया। उस समय जोवो (अतिशा) ने कहा, "महालोच्चावा! (आप) अमुक-अमुक धर्म जानते हैं क्या?" इस क्रम में तीनों पिटक प्रमुख सूत्र तंत्र (आदि) सभी विषयों पर प्रश्न करने पर लोच्चावा ने सबका उत्तर "हाँ, जानता हूँ"—कहकर दिया। तब जोवो (अतिशा) ने कहा, "ऐसा है तो हमारा यहाँ आना आवश्यक नहीं था।"

रात को सोते समय उस तिमंजिले विहार, जिसके निचले कक्ष में गुह्यसमाज के देवगण, मंझले कक्ष में हे-वज्र के देवगण और उपरले कक्ष में चक्रसम्वर के देवगण स्थापित थे, में से लोच्चावा रात्रि के प्रथम पहर में निचले कक्ष में, मध्यम पहर में मंझले कक्ष में और अन्तिम पहर (यानि भोर) में उपरले कक्ष में ध्यान साधना करते रहे। दूसरे दिन भोजन के समय जोवो (अतिशा) ने पूछा, "महालोच्चावा! कल रात्रि के प्रथम पहर में विहार के निचले कक्ष में, मध्यम पहर में मंझले कक्ष में और भोर में उपरले कक्ष में (आप) ध्यान साधना कर रहे थे—वह कैसा है?" लोच्चावा ने "ऐसा भिन्न-भिन्न देवताओं के उत्पत्ति एवं निष्पन्न क्रम के अनुसार अलग अलग ध्यान किया।"—कहा। तब जोवो (अतिशा) ने (अपना) चेहरा थोड़ा कालाकर कहा, "मेरे यहाँ आने की आवश्यकता है।" महालोच्चावा ने कहा, "तब आप कैसे मानते हैं?" जोवो (अतिशा) ने कहा, "ऐसा नहीं (जैसा आप मानते हैं।) सभी धर्मों का आचरण विनेय लोगों के आशय के अनुसार अलग-अलग अवश्य है। पर मूलतः सब एक रस ही होता है।[34] (अतः) सभी उत्पत्ति एवं निष्पन्न क्रम का अनुष्ठान एक आसन पर (ही) किया जा सकता है।" तब लोच्चावा ने, एक बृहद् गणचक्र का प्रबन्ध किया और बारह सेर-स्रङ (=स्वर्णमुद्रा), तीस खल यव (के साथ) अन्य (और) भी बहुत सा धन दक्षिणा के रूप में चढ़ाकर धर्म तथा अववाद की याचना की। (तब जोवो अतिशा ने लोच्चावा को) सहज चक्रसम्वर, अभिधर-तारा, जोवो परम्परा के महाकारुणिक (आर्यावलोकितेश्वर) —इन तीनों का अभिषेक, परिचय (और) सम्पूर्ण अववाद प्रदान किया। तदनुसार साधना करने पर (उक्त) तीनों का साक्षात्कार (उन्हें) हुआ। निष्प्रपञ्च अर्थ की

अधिगति होने (के साथ-साथ) अपरिमित अनुभूतियाँ भी उत्पन्न हुईं। गुरु लोच्चावा जोवो (अतिशा) के उन उपदेशों के प्रति आश्वस्त हुए और उन्हें कीमती समझकर आदर सम्मान करने लगे।

उसके बाद (पुनः) पु-हङस के 'जेर' विहार में जोवो (अतिशा) से (उनकी) भेंट हुई। तब जोवो (अतिशा) ने कहा, "महालोच्चावा! आप अनुवाद (कार्य) में दक्ष एवं विख्यात हैं। अतः आप मेरे अनुवादक बनें।" महालोच्चावा ने कहा, "गुरुजी! मैं 84 वर्ष का हो गया हूँ। मेरे केश (भी) सफेद हो गये हैं। मेरी ज़ुबान स्पष्ट न होने से (मैं) धार्मिक शब्दों की अशुद्धियाँ दूर नहीं कर पाऊँगा। (अतः आप मुझे) ऐसा न कहें।" (इस पर) जोवो (अतिशा) ने दुःखी मन से कहा, "मुझ में सोचने के लिए दिमाग होने पर भी बोलने के लिए ज़ुबान नहीं है। तब (जोवो अतिशा) के अनुवादक का कार्य नग-मृछो (नग-छो) (प्रदेश) के अनुवादक छुल ख्रिमस ग्र्यल-व (छुल-ठिमस ग्यल-बा=जिनशील) ने किया। फिर जोवो (अतिशा) ने कहा, "महालोच्चावा रत्नभद्र! आपने बहुत सारे धर्म जान लिए हैं, चित्त के स्वभाव को (साक्षात्) दिखानेवाले सद्गुरुओं से (आप) मिल चुके हैं। उप-भोग्य जीविका भी (आप को) प्राप्त है। अब आप अपनी (साधना) में ही जोर डालें।"

उसके बाद (लोच्चावा) पु-हङस के 'जेर-पा' नामक विहार में (बाहर से भीतर की ओर क्रमशः) तीन कक्षों की सीमा बाँधकर बाहरी कक्ष के द्वार पर शंख-अक्षरों में "यदि मुझ में अगले वर्ष इस समय तक क्षण भर के लिए भी क्लेश चित्त उत्पन्न हुआ, तो डाकिनियाँ (मुझे) दण्डित करें"—यह प्रतिज्ञा (वाक्य) लिखा। मध्य कक्ष के द्वार पर रजत अक्षरों में—"(यदि) मैं अगले साल के इस समय तक क्षण भर के लिए भी बोधिचित्त से अलग हुआ, तो डाकिनियाँ (मुझे) दण्डित करें" यह (प्रतिज्ञा वाक्य) लिखा। देवालय के भीतरी कक्ष के द्वार पर सुवर्ण-अक्षरों में, "(यदि) अगले साल के इस समय तक क्षण भर के लिए भी (मुझमें) अव्याकृत चित्त उत्पन्न हुआ, तो डाकिनियाँ (मुझे) दण्डित करें"—यह लिखा। इस प्रकार एक से (बढ़कर) एक कठोर प्रतिज्ञा वाक्य लिखकर वे (अपनी) साधना में एकाग्र हो गये। (उनकी) तीनों प्रतिज्ञाएँ पूर्ण हुईं और उन्हें निष्प्रपञ्च धर्मकाय (विषयक) वज्रोपम समाधि की (भी) प्राप्ति हुई। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य विशिष्ट स्थानों में भी अनेक साधनाएँ कीं।

इस प्रकार के उत्तम (तथा) विशिष्ट पुरुष के जन्म के समय माँ के दायें कंधे पर मोर का उतरना, उनके शरीर सुन्दर होने का अर्थ रखता है। बायें कंधे पर कोयल का उतरना, उनके मधुर धर्मघोष करने का अर्थ रखता है और शीश पर तोते का उतरना, (उनके) भोटभारतीय भाषा का महा अनुवादक होने का अर्थ रखता है।

जंघाचारिक (नामक) चिन्तामणि सिद्धि की प्राप्ति से गुरु महालोच्चावा तीन महीने (की दूरी) के भोट-कश्मीर मार्ग को छह-छह (यानि बारह) दिन में आते-जाते थे—ऐसा कहा जाता है।

11. खेचर प्रस्थान

कुछ लोगों का यह कहना है कि (वे) होम-लो (नामक प्रदेश) के छु-मिग-ल्ह-ज़िङ (छु-मिग-ल्ह-ज़िङ=दिव्य झील स्रोत) नामक स्थान की एक चट्टान के ऊपर से खेचर को प्रस्थान हुए। पर वहाँ (वे) एक वर्ष तक साधना में (अवश्य) बैठे थे, न कि (वहाँ से उन्होंने) खेचर प्रस्थान किया। ख्वचे (प्रदेश) के रेविङ-गो (नामक) स्थान से लुग-लो (मेढ़ वर्ष) में ९८ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर, शीत ऋतु के अन्तिम महीने के कृष्ण पक्ष की द्वितीय तिथि को, आश्विन नक्षत्र (के योग) में परहितार्थ वे खेचर को प्रस्थान हुए। (इसके अतिरिक्त महालोत्सावा ने विभिन्न विनेय जनों के आशय के अनुरूप) पु-हङ्स (प्रदेश के) होम-लो (नामक स्थान की) गुफा से, शिङ वङ (प्रदेश) के ग्यङ स्गुर (यङगुर) (नामक स्थान की) गुफा से, ख्वचे गोखर (प्रदेश) के रेविङ-गो (नामक स्थान) से भी खेचर को प्रस्थान करने का अलग-अलग प्रदर्शन किया।

उसके बाद (उनके) स्तम्भ (सदृश) चार और बीम (सदृश) आठ शिष्यों ने (अन्तिम संस्कार के रूप में) पूजा का प्रबन्ध किया और भिक्षु संघ, शिष्य पुत्रों ने (उनके) शरीर का दाह संस्कार (सम्पन्न) किया। (यद्यपि) दाह संस्कार में शरीर धातु तिल मात्र भी अवशिष्ट नहीं रहा, फिर भी, लोक-प्रवृत्ति के अनुरूप रत्ती फल के समान अत्यन्त लाल (छोटे-छोटे) तीन खण्ड धातु (=हड्डी) मिली; वे भी आकाश से मेघ गर्जन के समान वाद्ययन्त्रों की विविध ध्वनियों के साथ खेचर की ओर उड़ गईं। उसके बाद लगभग एक महीने तक सद्धर्म में आस्था रखनेवाले और प्रतिज्ञा में आबद्ध अमानुषी लोगों की प्रतिदिन रात्रि के समय उस धातु पूजा स्थान से विलाप करने की आवाज आने लगी तब अश्विनी नक्षत्र की योग-वाली पूर्णिमा के दिन दाह संस्कार स्थल पर इन्द्र धनुष के साथ फूलों की खूब वर्षा हुई। उसके बाद उन अमानुषियों के शोक विलाप की आवाज आनी भी बन्द हो गई। जोवो छेन-पो-ल्ह चिग (जो-वो-छेन-पो-ल्ह-चिग) (अतिशा) से इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा, "बोधिसत्त्व लोत्सावा ने करुणावश आकाश से भूत-प्रेत आदि अमानुषी लोगों को अनित्यता से सम्बद्ध धर्मोपदेश देकर (उन्हें) सद्धर्म में प्रवेश करवा दिया है।—(इसलिए अब) वे लोग शोक निवृत्त हो गए हैं। इस समय महालोत्सावा सुवर्ण प्रभा डाकिनी के आमन्त्रण पर पश्चिमी दिशा (स्थित) सुखावती लोक धातु में भगवान् अमिताभ के चरण सान्निध्य में विराजमान हैं"—ऐसा कहकर उस ओर हाथ जोड़ने लगे।

इस प्रकार वे महापुरुष शाक्यमुनि के निर्मितक ही हैं न कि सिद्धि लब्ध पुरुष। उनकी (धार्मिक) धन सम्पत्ति का हरण करनेवालों का अमंगल के साथ अन्ततोगत्वा वंश भी उच्छिन्न हो जाता है। इसलिए इस विषय में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

**लेखक का आह्वान**

(बुद्ध के काय-वाक्-चित्त के (पूज्य) प्रतीकों=मूर्ति, ग्रंथ और स्तूप), एवं पूजा सामग्रियाँ, लोच़ावा की बृहद्, मध्यम एवं लघु तीनों जीवनियाँ, धर्म घंटी सूचीपत्र (आदि) की रक्षा लोच़ावा के वंशज एवं सम्बद्ध इक्कीस छोटे प्रदेशों के कर्णधार लोग करें। साथ ही, विहारों, (उनकी) सामग्रियों एवं पूजा-उपकरणों की भी रक्षा करें।

गुगे (प्रदेश के) ख्यिरङ (खिरङ) के ज्ञानश्री द्वारा लिपिबद्ध बोधिसत्त्व लोच़ावा रत्नभद्र के स्फटिक रत्न गुम्फित माला तपो प्रदीप नामक जीवन वृत्तान्त समाप्त।

**परिणामना**

मुनि शासन धर्मरत्न के निधिधर, दसों दिशाओं में सुकृत्यों की रश्मि फैलानेवाले उन जिनपुत्र के चरणकमलों की, मैं (अपने) सभी जन्म जन्मान्तरों में सादर अंजलिबद्ध पूजा करने वाला होऊँ।

गुगे[35] के खिरङ (निवासी) ज्ञानश्री द्वारा मृथो ल्दिङ (थो-दिङ) (नामक स्थान) में लिखित यह मध्यम जीवनी है। जिन-जिन उपाध्यायों और पंडितों से अमुक-अमुक धर्म (उपदेश) ग्रहण किए और (साथ ही) धर्म निधि, धननिधि, काष्ठनिधि आदि का सूक्ष्म विवरण (उनकी) बृहद् जीवनी में स्पष्ट किया गया है।

स्तम्भ सदृश चार शिष्यों में ख्यचे के रिनछेन शेस-रब (प्रज्ञारत्न), स्क्येन वेर (क्येन वेर) के शेस-रब-दम-प (=परम प्रज्ञ), खिरङ के ये-शेस-द्पल (=ज्ञानश्री) दोल-पो के ब्यङ-छुब-स्त्रिङ-पो (=बोधिगर्भ) हैं। बीम के सदृश आठ शिष्य-वजन (निवासी) योन-तन-लेगस-प (=सुगुण), स्बु-वु (बु-वु) के अनुवादक बृज़ङ मृछोग (=परम भद्र), गुर-शिङ निवासी बृचोन-ह्ग्रुस-ग्यल-मृछन (=वीर्यध्वज), मनम (निवासी) छुल-ख्रिमस-स्त्रिङ-पो (छुल-ठिमस-ञिङपो=शीलगर्भ), द्गे-थङ (गे-थङ) निवासी दुपल-ग्यि-ब्यङ छुब (पल-गि-जङ-छुब=श्रीबोधि), सस निवासी गृसेर बृजङ (सेर-जङ=सुवर्ण भद्र), वगो (निवासी) योन तन शेस-रब (=गुण प्रज्ञ), सेद दुकर (सेदकर) निवासी बृसोद-नमस-शेस-रब (सोद-नमस-शेस-रब=पुण्यप्रज्ञ) हैं।

भवतु सर्वमंगलम्

---

**पाद-टिप्पणियाँ**

1. यहाँ उद्धृत सूत्र वचन किस ग्रंथ का है, स्पष्ट नहीं है, हमें नहीं मिला।
2. यहाँ भोटी में फ-स्पो शब्द है, जिसका अर्थ पिता से सम्बद्ध भाई होता है।
3. 'ज़' शब्द का प्रयोग भोटी में विवाहित रानी के लिए होता है।
4. ज्ञानश्री कृत संक्षिप्त जीवनी में गरुड़ की जगह जिउ-छुङ=छोटी चिड़िया का उल्लेख है। द्र. संक्षिप्त जीवनी पृ. 235, दोर्जे छेतन संस्करण, 1977।

5. देव-थेर-ङोन-पो के अनुसार लोचावा का जन्म सन् 958 में हुआ। इसे टुचि ने भी माना है। द्र. देव-थेर-पहला भाग-पृ. 14, सि-ठोन. संस्करण, 1984; टुचिकृत रिनछेन ज़ङ..., Indo Tib-II.
6. देव-थेर-ङोन-पो-1 के अनुसार उपाध्याय का नाम ये-शेस-बृज़ङ-पो ज्ञानभद्र है। पर यह उनका भिक्षु नाम है, उनका बचपन का नाम लेगस-प-ज़ङ्-पो=सुभद्र था। द्र. देव थेर. पृ. 14 वही।
7. 'उड्डियान'—कुछ आचार्य इसे वर्तमान उड़ीसा प्रदेश मानते हैं। कुछ लोग इसे अफ़गानिस्तान के एक भू-भाग को मानते हैं, जो कश्मीर एवं अफ़गानिस्तान के बीच स्थित है। कुल्लू तथा उड्डियान दोनों को सिद्ध पीठ माना जाता है।
8. 'कौड़ी'—यह उस समय रुपये पैसे के काम में लाई जाती थी।
9. भोटी में किन्नौर को 'खुनु' और कुल्लू को ञुङति कहते हैं।
10. 'लाहुल' का स्थानीय नाम 'गरज़ा' है।
11. यहाँ जो सैंकड़ों स्तूपों की बात की है, ये मिट्टी के छोटे-छोटे स्तूप जिन्हें छाछा कहते हैं, इनका निर्माण किया है।
12. जंघाचारिक सिद्धि—यह एक तान्त्रिक सिद्धि है। इस सिद्धि का लाभ होने पर साधक महीनों का रास्ता एक ही दिन में पारकर जाता है।
13. यह श्रद्धाकर वर्मा वे नहीं हैं, जिन्होंने उन्हें धूपदानी दी थी।
14. नाडपाद, जिन्हें हिमालयी बौद्ध जन नरोपा के नाम से जानते हैं, मरपा छोस-कि-लोडोस के गुरु थे।
15. ल्ह-ल्दे बृचन, स्रोङ-ङे के पुत्र और जङ छुब-ओद् के पिता थे। द्र. देव-थेर-स्ङोन-पो-1,पृ. 14, वही। नोट इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है।
16. 'मृथो-ल्दिङ—को अन्यत्र मृथो-ग्लिङ भी कहा गया है। इन दोनों नामों के पीछे कुछ दन्तकथाएँ भी हैं।
17. ज्ञानश्री कृत संक्षिप्त जीवनी में इस स्थान पर द्वेषवश अश्व आदि न ले जा पाना यह पाठ भेद है। द्र. टुचिकृत रिनछेन-ज़ङ्-पो, पृ. 114 वही...।
18. 'ल्ह-ब्ल-म-ये-शेस-ओद' प्रव्रजित होने के बाद लड़ाई में गरलोग वालों द्वारा पकड़े गए और जेल में ही उनका देहावसान हो गया। द्र. देव थेर ङोन-पो-1, पृ. 15-17, वही। 'गर-लोग' एक देश विशेष का नाम है। भोटी इतिहासकारों ने इसकी खूब चर्चा की, पर यह देश कहाँ है, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। बहुत छानबीन के बाद पता चला कि यह देश वर्तमान 'गिलगित' प्रदेश है, जो कश्मीर एवं अफ़गानिस्तान के बीच में है। इसका वास्तविक नाम 'गरलोग' नहीं 'कर-लोग' है। यह शब्द वहाँ का स्थानीय उच्चारण है।
19. पूजा के अवसर पर बजाया जानेवाला विशेष ढोल।
20. सुमनम-गाँव वर्तमान जिला किन्नौर, के पूह मण्डल के अंतर्गत श्यसो-खड्ड से

9 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। जहाँ पर जलसर्प छूटा था, उस जगह का नाम डति नहीं ब्राति है। यह जगह सुमनम गाँव के दूसरी ओर किन्नौर के पुराने मार्ग पर पड़ती है।

21. यहाँ 'बलि' से तात्पर्य खून की बलि नहीं है।
22. 'रक्षिका'--उन अमानुषी योनि के लोगों को कहते हैं, जो किसी देवता या सिद्ध पुरुष की आज्ञा के अनुसार किसी विहार, मन्दिर, देवालय, गाँव आदि की रक्षा करती है।
23. 'खल'-- का तात्पर्य स्थानीय माप से है। बीस द्रोण अन्न को एक 'खल' कहा जाता है।
24. 'रुमा- उस अनाज को कहते हैं, जिससे 'छङ्' नामक पेय-पदार्थ बनता है।
25. जो-लिङ--यह स्थान वर्तमान हांगो (हङ) गाँव से 10 कि.मी. की दूरी पर हङ-रङ नदी के तट पर स्थित है। यहाँ भी लोच्चावा द्वारा निर्मित विहार मौजूद है। इसका स्थानीय नाम 'चुलिङ' है। यह 'जो-लिङ' या 'शो-लिङ' शब्द का अपभ्रंश रूप है। 'जो' या 'शो' स्थानीय बोली में दही को कहते हैं। किसी समय वहाँ पशु-पालन की अच्छी सुविधा होने से दही खूब हुआ करता था। इसलिए इस गाँव का नाम जो-लिङ पड़ा है।
26. 'हुङ्-त्रङ्'--यह गाँव कहाँ है, स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः यह गाँव वर्तमान किन्नौर का 'असरङ्' गाँव, जो लिप्पा गाँव से 13 कि.मी. ऊपर है; हो सकता है। हुङ् के हु का 'अ' होना किन्नौर के उच्चारण के लिए बहुत सम्भव है। साथ ही 'त्रङ' का 'सरङ्' होना भी। क्योंकि इस गाँव के तोक्तो में लोच्चावा का प्राचीन विहार आज भी मौजूद है।
27. ताबो गाँव में ही प्रसिद्ध ताबो गोन्पा है। इसे-- 'र्तफो, तावो, र्त-सो' आदि कहने की परम्परा है।
28. 'शङस'-- यह वर्तमान जिला किन्नौर में स्थित 'ठङ' गाँव का ही नाम है। इसे ऊपरी किन्नौर के लोग 'ठङे' कहते हैं। आजकल सरकारी कागज़ातों में इस गाँव का नाम 'ठंगी' लिखा है। इस गाँव के तथा आसपास के बुज़ुर्ग लोग आज भी इस गाँव को 'शङस' ही कहते हैं। 'ठङे' गाँव के समीप एक खड्ड है, जिसका नाम 'शङस कुई' है। इसके कारण इस गाँव का नाम 'शङस' पड़ा है। यह गाँव मूरंग से अन्दर 'रोवङ' खड्ड के ऊपरी तट पर स्थित है। यहाँ लोच्चावा द्वारा निर्मित विहार कुछ वर्ष पहले तक मौजूद था, किन्तु अब उसकी जगह नए बौद्ध विहार का निर्माण हुआ है।
29. इक्कीस छोटे गाँव का उल्लेख है, पर उनमें नाम गिनते समय 20 गाँव के ही नाम आए हैं। उन नामों में 'रिग-च्चे' यह नाम छूटा लगता है, इसे यहाँ जोड़ा गया है।

यह 'रिग-च्रे' वर्तमान किन्नौर की अत्यन्त प्रसिद्ध रङ-रिग-च्रे जगह है, क्योंकि यहाँ लोच्छावा का विहार आज भी मौजूद है।

30. होपुलङ्का—इस नाम में प्रयुक्त 'लङक' शब्द को लेकर टुचि साहब ने अपनी पुस्तक इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 63 पर पहले इस जगह को लद्दाख में 'खपलु' नामक स्थान के निकटवर्ती गाँव 'लङ्का' को माना था। पर उन्होंने अपनी पुस्तक इण्डो-तिबेटिका-III-I, पृ. 4 पर अपनी उपर्युक्त गलती को सुधारते हुए, इसे किन्नौर ज़िले के पङे (पंगी) गाँव, जहाँ रत्नभद्र का एक प्राचीन विहार अब भी विद्यमान है, की सीमा से चिने (कल्पा) तक के क्षेत्र को माना है। चिने में भी रत्नभद्र का एक विहार था, जो कुछ वर्ष पूर्व अग्निग्रस्त हो गया। अब उसी विहार की जगह पर नया विहार बना है।

    टुचि साहब की सुधार की गई बात से हम भी सहमत हैं। वर्तमान समय में भी पंगी से लेकर चिने का आखिरी छोर टोन-नङ्चे तक के क्षेत्र को होपु और वहाँ के निवासियों को होपु-पा और वहाँ की महिलाओं को होपुटे कहते हैं। होपु क्षेत्र को साइराक भी कहते हैं। साइराक यानि दस गाँव वाला क्षेत्र। महानुवादक रत्नभद्र ने इसी होपु क्षेत्र के चुङलिङे के ऊपरी भाग से क्युवङ् के ऊपरी भाग में ले जाकर छोड़ने के लिए तीन जलसर्प पकड़े थे।

31. यहाँ मूल में जलसर्पों की संख्या तीन नहीं है, किन्तु आगे के विवरणों में जलसर्पों की संख्या तीन होना निश्चित है। ज्ञानश्री कृत संक्षिप्त जीवनी में जलसर्पों की संख्या तीन है। द्र. संक्षिप्त जीवनी, छेतन दोर्जे संस्करण पृ. 185, सन् 1977।

32. तुगथङ यह स्थान किन्नौर के पूह गाँव के नीचे सतलुज नदी के किनारे पर स्थित है। जलसर्प के भागकर उस स्थान पर छिप जाने से आज भी वहाँ स्वच्छ पानी निकलता है।

33. 'जो-वो ल्ह-चिग' शब्द का प्रयोग भोट देश के लोग अतिशा के लिए सम्मानजनक सम्बोधन के रूप में करते हैं।

34. भगवान् के सभी प्रवचन 'रस' की दृष्टि से एक ही होता है, वह है निर्वाण 'रस' (निव्वाण रस)—द्र. पालि.....।

35. 'गुगे' प्रदेश उस प्रदेश को कहते हैं, जो मांङ सरोवर के चारों ओर का प्रदेश है। मांङ सरोवर को 'मानसरोवर' भी कहते हैं।

# ज्ञानश्री विरचित गुरु लोछेन रिनछेन जङ्-पो की विमल स्फटिक रत्नमाला नामक संक्षिप्त जीवनी

**भूमिका**

सामान्य रूप से किसी क्षेत्र विशेष या सामाजिक परिवेश के ऐतिहासिक अध्ययन में सम्बन्धित समाज में पनपी वैचारिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का अध्ययन परमावश्यक होता है। उस समाज के सांस्कृतिक वैभव की उत्कृष्टता उस समाज में जन्मे महापुरुषों की जीवनियों में ही देखी जाती है। अतः किसी महापुरुष की जीवनी को यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना हो तो उनके कार्य क्षेत्र, भौगोलिक परिस्थिति, सांस्कृतिक विस्तार, धार्मिक विचारों का प्रभाव, दार्शनिक या तत्त्वचिन्तन की व्यापकता आदि का मूल्यांकन करना होता है। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर हमने महालोचावा रिनछेन जङ्-पो (=महानुवादक रत्नभद्र) की मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनी का हिन्दी रूपान्तर छोस खोर लिङ बौद्ध सेवा संघ, किन्नौर (हि. प्र.) की शोध पत्रिका विद्याभारती के दशमांक (नवम्बर 1990 पृ. 30-47) तथा त्रयोदशाङ्क (मई, 1993, पृ. 20-45) में प्रकाशित किया था। यह जीवनी महानुवादक रत्नभद्र के श्रीमुख से सुनकर उनके शिष्य गुगे वर्तमान पश्चिमी तिब्बत के खिरङवासी ज्ञानश्री द्वारा भोटी में लिखी गई है। ज्ञानश्री ने इन दो जीवनियों के अतिरिक्त एक तीसरी जीवनी भी लिखी थी, जो अपेक्षाकृत विस्तृत थी, परंतु अभी तक उपलब्ध नहीं हो पायी है। मध्यम जीवनी से यह संकेत मिलता है कि उस विस्तृत जीवनी में महानुवादक की सभी गतिविधियों का उल्लेख हुआ है। किन्तु जब तक यह विस्तृत जीवनी उपलब्ध नहीं होती है, तक तक महानुवादक के कृत्यों के सम्बन्ध में पड़ी अज्ञानता की परतें आसानी से नहीं हटेंगी।

ज्ञानश्री द्वारा लिखित महानुवादक रत्नभद्र की मध्यम जीवनी की अपेक्षा संक्षिप्त जीवनी में उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का बहुत संक्षेप में विवरण है। विषय की दृष्टि से भी दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

इस संक्षिप्त जीवनी में निहित अनेक मुद्दों पर शोधपूर्ण टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। साथ ही रत्नभद्र के जीवन से सम्बन्धित बहुत से विवरण, जो अन्य ग्रन्थों में मिलते

हैं, जिनमें मतैक्य नहीं हैं, उन मुद्दों पर भी यथासम्भव समीक्षात्मक टिप्पणियाँ दी गईं हैं। शोधकर्ताओं को इससे कुछ सहायता मिलने की उम्मीद है। साथ ही विद्याभारती-13वें में प्रकाशित संक्षिप्त जीवनी में, जो कमियाँ रह गई थीं, वे इसमें दूर कर दी गई हैं। इसकी पादटिप्पणियों में भोटी मूल का देवनागरी में लिप्यन्तरण भी किया है। सुविधा के लिए उच्चारण कोष्ठ में दिया है जिससे भोटी मूल को देवनागरी लिपि में पढ़ने की सुविधा होगी। पादटिप्पणियों में दिये गये सांकेतिक चिन्हों के लिए पाठक इस ग्रन्थ के अन्त में दिये गये सांकेतिक विवरण तथा ग्रन्थों की सूची को देखें।

## संक्षिप्त जीवनी का मूल

### प्रशस्ति

नमो गुरुरत्नभद्राय[1]। महा अनुवादक गुरु रत्नभद्र को (मेरा) नमस्कार है। मुनि शासन को प्रकाशित करनेवाले उन रत्नभद्र को (मेरा) सादर नमस्कार है।

### प्रतिज्ञा

(गुरु महानुवादक की) कृपा अनुस्मरणार्थ तथा (अपने मन में) श्रद्धा (रूपी) अंकुर के उत्पाद (के लिए उनके श्री) मुख से कही गई, सुनी होने के कारण यहाँ पुरुषोत्तम रत्नभद्र की जीवनी सूत्रमात्र (यानि संक्षेप में मैं ज्ञानश्री) लिखने जा रहा हूँ। उन महाबोधिसत्त्व की जीवनी को (यहाँ) दस[2] मदों में कहा जा रहा है-

1. उन महापुरुष की वंश परम्परा क्या रही।
2. (उनका) जन्म कहाँ हुआ।
3. कहाँ पर (उन्हें) प्रव्रजित किया।
4. किन गुरुओं (एवं) उपाध्यायों से (उन्होंने) धर्म (श्रवण के लिए) प्रार्थना की।
5. सद्धर्म के कितने (ग्रंथों का संस्कृत से भोटभाषा में) अनुवाद किया।
6. अधिष्ठानों (=धर्मसंस्थानों) एवं विहारों का निर्माण कैसे किया।
7. इक्कीस गाँवों में पूजा व्यवस्था कैसे की।
8. विशिष्ट साधना कहाँ पर की।
9. किस जगह से (उन्होंने) खेचर को प्रस्थान किया।

### वंश परम्परा

महानुवादक का निवास स्थान गुगे (प्रान्त का) ख्वचे[3] था। (उनका) गोत्र ख्वचे ग्युइ-ख्रि(ख्व-चे-यु-ठि) के ग्युइ-स्त्र (यु-डा) था। रुस (=वंश) ल्ह-ञि-म-हुगस (ल्ह-ञिमा-हुगस) की वंश परम्परा के (होने से जहाँ उनके वंश को) हुगस-वेर कहा जाता है। वहीं (लोत्सावा के) मामा के नागवंश से सम्बद्ध होने से (माँ के वंश की दृष्टि से उन्हें) क्लु-जोर-छ़ (लु-ज़ोर-छ[4]) भी कहा जाता है। यों (उनके) पितामह 'ग्युइ-स्त्र-स्तोड-ब्छ़न[5] (यु-डा-तोङ-छ़न) का पूज्य स्थान स्क्यु-वड-रदनि[6] (क्यु-वड-रदनि) था। उनके पिता का नाम बन-छेन-पो-गूजोन-नु-द्वड-फ्युग (बन-छेन-पो-जोन-नु-वङ-छुग=

महाभदन्त ईश्वर कुमार) था (उनकी) मां का नाम चोग-रोस[7] कुन-बूज़ड-शेस-रब-बूस्तन-मा (चोग-रोस-कुन-ज़ड-शेरब तन-मा=चोग-रो वासिनी समन्त भद्रा प्रज्ञा शासनी) था। उन (दोनों) की चार सन्तानें हुई थीं। उनके तीन पुत्रों (और एक पुत्री) के नाम (क्रमशः इस प्रकार है)—बड़े भाई शेस-रब-द्वङ-फ्युग (शेरब-वङ-छुग=प्रज्ञेश्वर), मंझले भाई रिन-छेन-द्वङ-फ्युग (रिन-छेन-वङ-छुग=रत्नेश्वर), छोटे भाई योन तन- द्वङ-फ्युग (योन तन-वङ-छुग=गुणेश्वर) थे। (उन) सबकी (छोटी) बहिन[8] (का नाम) शेस-रब-मृछो-मो(=प्रज्ञा सरिता) था। (उनमें से) मंझले रिन-छेन-वङ-छुग (=रत्नेश्वर)[9] ही गुरु महानुवादक थे। शेस-रब-वङ-छुग (प्रज्ञेश्वर) ने गृहस्थ का वेश ग्रहण किया। छोटे भाई योन-तन-वङ-छुग प्रव्रजित होकर छोटी (आयु में ही) साधना में बैठ गये। (छोटी) बहिन ने मन्त्र (यान) की दीक्षा ली और सिद्धि प्राप्त र्नल-ह्ब्योर-म- मृछोग- गि-स्ग्रोन-म (नल-जोर-म-छोग-गि-डोन-म) यानि वह योगिनी प्रदीपोत्तमा के नाम से (प्रसिद्ध) हुई।

**जन्म**

बोधिसत्त्व (जब) माँ के गर्भ में थे (उस) समय माँ को अहर्निश (अपने) दायें कंधे पर सूर्य, बायें पर चन्द्रमा, शीश पर फीरोजा की चोंच और पंजे वाली एक सुनहरी छोटी चिड़िया[10] जो मुख से विविध मधुर ध्वनियाँ निकालती हुई, उड़ने (के लिए अपने पंखों को) फड़फड़ा रही होती थी, का आभास होता रहा। उसके बाद प्रसवकाल आने पर माँ ने स्वप्न में उक्त सुनहरी चिड़िया को अपने शीश (के भीतर) प्रवेश करके, गुह्यस्थान से (बाहर) निकल और तीन बार उनकी परिक्रमा कर आकाश में (उड़कर) जाती देखा। (भोट पंचांग के अनुसार) अश्व वर्ष की वर्षा ऋतु के अन्तिम महीने में (शुक्ल पक्ष) की दसवीं तिथि[11] को क्यु-वङ के, एक आयताकार खेत में गुड़ाई करते समय माँ की तबीयत थोड़ी भारी हो जाने पर (वह) खेत के ऊपरी भाग में जा (बैठी)। उस समय माँ के दायें कन्धे पर एक मोर बायें पर एक कोयल, शीश पर एक तोता (साक्षात् रूप में) उतर आये, तो पिता ने कहा—"इस तरह के पक्षी अकस्मात् कहाँ से आये?" (उनका इतना ही) कहना था कि (वे सारे पक्षी) माँ (के शरीर) में विलीन हो गये। उसके बाद नीले रंग का एक शिशु (जिसका) नेत्र और चेहरा पक्षी के समान[12], और (जिसकी) दायीं हथेली में धर्मचक्र का (चिन्ह) था, उत्पन्न हुआ।

**दीक्षा**

दो वर्ष का होने पर (बालक को एक समय) मुख से अ आ इ ई-ऐसा उच्चारण करते हुए, अंजलीबद्ध खड़े देखा। (यह देखकर) पिता ने कहा, "(यह बालक) भाग्यवान् है" और इसी विचार से उन्होंने (बालक को) काषाय वस्त्र पहनाकर उपासक बनाया।

**जन्म स्थान**

(बालक रिन-छेन-वङ-छुग) का जन्म उसके पितामह यु-डा-तोङ-चन के द्वारा

पूजित (यानि सेवित) क्षेत्र क्यु-वङ के रदनि में हुआ।

**प्रव्रज्या**

उपाध्याय लेगस-प-बूज़ङ-पो (लेगस-पा-ज़ङ-पो=सुभद्र[13]) ने तेरह वर्ष की आयु में (उन्हें) प्रव्रजित किया। (प्रव्रज्या के बाद) उनका नाम रिनछेन-बूज़ङ-पो (रिन-छेन-ज़ङ्-पो=रत्नभद्र) प्रसिद्ध हो गया। (उन्होंने छोटी आयु में ही शाक्य प्रभ द्वारा विरचित) त्रिशत-कारिका नामक विनय से संबद्ध ग्रंथ को प्रभावती टीका सहित हृदयंगम कर लिया।

**डाकिनी द्वारा भविष्यवाणी**

बालक सत्रह वर्ष की आयु के होने पर (एक दिन) "उड्डियान[14] से आया हूँ" कहनेवाले (उनके घर आये) एक पंडित को (रत्नभद्र) की माँ ने खाद्य सामग्री लेकर (घर में) भोजन कराया[15]। (भोजन ग्रहणकर लेने के बाद उनके बैठने के) स्थान पर एक छोटी (सी) भारतीय पुस्तक छूटी पड़ी थी, (जिसे रत्नभद्र) ने बाद में देखा। (उसे देखकर) उन्होंने सोचा—"इस भारतीय पोथी के भीतर कोई विशिष्ट अववाद (=उपदेश) होगा। किन्तु मुझे भारतीय भाषा नहीं आती है—ऐसा सोचते हुए (वे अपने) गाँव के नीचे, किसी जगह में एक पेड़ की शीतल छाया में बैठे। कुछ देर में (उन्हें) नींद आ गई और स्वप्न में (उन्होंने) एक लोहित वर्णा स्त्री, (जो) रत्न मुकुट, हार (तथा) रेशमी डोरियों से अलंकृत थी, (जो अपने) दाहिने हाथ में डमरू तथा बायें (हाथ में) मुट्ठी भर फूल धारण किये हुए थी[16] ने (उनके) सामने आकर इस प्रकार कहा—

मकड़ी (अपनी) लार से अपने को आबद्ध कर देने की भांति (अपने) देश के प्रति आसक्ति (रखने) से (व्यक्ति) मार के जाल में बंध जाता है। (जो) कोई व्यक्ति सुगति तथा मुक्ति की चाह रखता हो, (वह) उत्तरी दिशा (में स्थित) कश्मीर जा, फिर भारत के पूर्व से पश्चिम (सभी जगहों को) जल की भांति (अपने चरणों से) स्पर्शकर सद्धर्म (रूपी) समुद्र को भोट भाषा में अनूदित करे तो सुखद होगा।[17]

ऐसे शब्द कहकर (वह स्त्री) अन्तर्धान हो गई। नींद से जागे तो, (उनका) सारा शरीर जल में प्रवेश किए की भांति पसीने से तर हो गया था। तब (वे) क्षुब्ध एवं खिन्न मन होकर घर आये। उन्होंने सोचा—"(यह मेरे लिए) डाकिनी की भविष्यवाणी है। (अतः) अब कश्मीर तथा भारत को न जाय तो, (मेरे) जीवन तथा धर्म (दोनों) में विघ्न पड़ सकता है। (यदि) जाय तो (उन) जगहों का (मुझे) परिचय न होने से (मेरे) माता-पिता दोनों के मन में व्याकुलता (बनी) रहेगी, जिससे मुझमें कुसंस्कार का सञ्चय होगा। अब कैसे किया जाय"—इस सोच में (उनका) मन घूमता रहा। (तब उनकी) माँ ने (अपने) पुत्र के अत्यन्त काले हुए चेहरे को देख (बोली)—"बेटे! बीमार हो? चेहरा काला क्यों है? (माँ के पूछने पर उन्होंने) डाकिनी ने जो (उनके सम्बन्ध में) भविष्यवाणी (की थी), वह सारा वृत्तान्त कह दिया।

**कश्मीर गमन**

(उसके बाद) बन्धुबान्धवों (के साथ) माता-पिता का विचार (विमर्श) हुआ। (और) पिता ने कहा "इस बेटे को (हम) कश्मीर न भेजें तो, धर्म तथा (इसके) जीवन दोनों में विघ्न पड़नेवाला है। यदि भेजें तो, हम सभी (लोगों) का दिल फट जाने के समान है।–ऐसा होने पर भी (इसे कश्मीर) भेजे बिना (काम) होनेवाला नहीं है।" (अतः) वे सभी लोग भी (पिता के कहेनुसार) सहमत हो गये। "कश्मीर जाकर इस बार फिलहाल, कश्मीर से ही (स्वदेश) लौट आये, पूर्वी-भारत न जाये"–ऐसा (तय) किया (गया)। उस समय (तक वे) अट्ठारह वर्ष के हो गये थे। अपने भाई[18] ब्क्र-शिस-र्छे-मो (टशि छे-मो=मंगलशेखर) नामक उपासक (को) साथी (के रूप में) तैयारकर मार्ग व्यय (के रूप में) छह सौ कौड़ी[19] और (अन्य) यथोचित द्रव्य आदि (का प्रबन्धकर) माँ ने शुभ स्वादिष्ट भोजन दिया। साथ ही पुराने कपड़ों से (वे अपना) वेश बदलकर उपासक के अलावा और एक कुल्लू[20] (निवासी जो आगे की जगहों से) परिचित था, के साथ (मिलकर) चल पड़े। माँ भी (कुछ दूरी तक उन्हें) पहुँचाकर लौट गई। वे तीनों किन्नौर[21] (के मार्ग से) लाहुल[22] निकलकर भिक्षाटन करते हुए चले। इसके बाद एक महीने तीन दिन में (वे लोग) क-रि-क (कारिका)[23] नामक गाँव में पहुँचे। मार्ग में (चलने से) तंग होकर कुल्लूवाले मित्र ने (और आगे) चलने की अनिच्छा जताई। तब स्वामी और दास यानी रत्नभद्र और उपासक दो ही आगे चल पड़े। तीन दिन का मार्ग (तय करने के बाद वे दोनों) महासंगल नामक एक बड़े पुल पर (पहुँचे, वहाँ पर वे दोनों पुल पार करनेवालों से) कर वसूल करनेवाले रूक्ष मार्गरक्षकों के तीन घराने (वाले गाँव)[24], में पच्चास कौड़ी[25] देकर एक रात्रि वहीं सोये। अगले दिन प्रातः ही पुल पारकर एक दर्रे का दो तिहाई (भाग) पार करने पर (बड़े) भाई उपासक सख्त बीमार हो, मरने (के समान) हो गये। स्वयं (उन्हें) भी थकान आदि से मन खिन्न हो नींद आ गई। स्वप्न में पहलेवाली वही डाकिनी (पुनः) आकर–"पुत्र उठो! भाई (के जीवन) में कल रात पुल पर निवास करनेवाली, धार्मिकों के प्रति अप्रसन्न (रहने वाली एक) यक्षिणी ने विघ्न डालने को सोचा था (किन्तु) मैंने उसका निवारण कर दिया है (और) रोगी भी शीघ्र स्वस्थ होनेवाला है। यहाँ पर बहुत शीघ्र डाकू लोग आनेवाले हैं। (अतः) विपथ (यानि दूसरे रास्ते से होकर) जाओ। त्रिरत्न की प्रार्थना करो।"–कहा। तत्काल (रिनछेन-ज़ङ्-पो) उठकर रोगी का हाथ पकड़ (करके) त्रिरत्न) की प्रार्थना करते हुए ले जाते (आगे) चालीस कदम मात्र चलकर (पीछे) देखा तो, पहले की जगह पर तीन सौ के लगभग डाकू शस्त्र उठाये पहुँचे हुए थे। (त्रि-) रत्न और डाकिनी के आशीर्वाद से वे दोनों (उन डाकुओं द्वारा) बिना देखे सही मार्ग पर चलते गये। तब (तक) बीमार (भाई भी) स्वस्थ हो गया था। डाकुओं के भय से मुक्त होकर (राहत की) सांस छोड़ते हुए प्रसन्नचित्त (उन्होंने) उस ऊँचे दर्रे को पार किया। तीन दिन तक (उन दोनों के पास) खाने के लिए कुछ भी नहीं था।

### बूढ़ी माँ (तथा) बेटी से भेंट

(एक दिन) जंगल के किसी संकरे मार्ग से नीचे आने पर (उन दोनों की) भेंट चावल का बोझ उठा ले जा रही बूढ़ी माँ और उनकी बेटी से हुई। (उन दोनों यात्रियों ने) भिक्षापात्र को आगे बढ़ाकर (भिक्षा) देने का संकेत किया, तो (उन दोनों ने उन्हें) चार-पांच द्रोण[26] (चावल) भेंट किये। चावल उबालकर खाने पर (शरीर) धातु भी ठीक हो गया। उसके बाद प्रतिदान (के रूप में) परिणामना कथन के साथ (रत्नभद्र ने) सोचा—(ये) बूढ़ी माँ-बेटी (हमारे लिए) माँ और बहिन के रूप में आयी हैं। (अतः) इनके प्रति आभार प्रकट करने के लिए एक सौ आठ स्तूप[27] बनाने चाहिए।"—(यह) सोचकर (उन्होंने) बुढ़िया से तुम्हारे सिर के केश की चोटी से कुछ अंश हमें दे दो, (कहकर) माँगने का संकेत किया। बुढ़िया (ने) अत्यन्त शुद्ध मन होने से—"(यदि) आपको चाहिए तो काट लो" का संकेत किया। इस सम्बन्ध में रत्नभद्र कहते हैं कि "मैंने (उसे अपना प्रयोजन समझाने के लिए अपनी धार्मिक पुस्तकें रखने के) झोले से हाथी दांत (से निर्मित) महाकारुणिक (आर्यावलोकितेश्वर) की अंगुलभर[28] (की प्रतिमा) उन्हें दिखायी। (साथ ही उन्हें) स्तूप निर्माण का नमूना दिखाते हुए, (ऐसा बनाते समय) इसमें (तुम्हारे केश को) मिलाना है, का हाथ से संकेत किया। (इस पर) वृद्धा ने प्रसन्न होकर (अपने) बाल के शिखर से (कुछ) अंश काटकर (मुझे) अर्पण किये और प्रणामकर (अपनी) जीभ बाहर निकाल (और उसे) हाथ से पकड़कर—यह कटी हुई के समान है (कहने का संकेत) किया। ऐसा करने के बाद वह आँसू बहाती चली गई। स्वयं (गुरुरत्नभद्र के मन में भी उस वृद्धा के प्रति) करुणा उमड़ पड़ी, (जिससे उनके भी) आँसू निकल पड़े। बाद में कश्मीर पहुँचकर उन्होंने वृद्धा के हित के लिए उसके द्वारा प्रदत्त केश को आग में दहनकर (उसकी भस्म को मिट्टी में मिलाकर) एक सौ आठ स्तूपों (छाछा) का निर्माण किया।

### योगी का आशीर्वाद

उस (घटना) के बाद आधे दिन के लगभग (चलने पर वे दोनों) कश्मीर की सीमा में ब्राह्मणों के सात घरानेवाले गाँव में पहुँचे। वहाँ पर (दोनों ने) एक महीना ठहरकर (स्थानीय) बोल-चाल की थोड़ी (बहुत) भाषा सीखी। इसके बाद (वे) कलचगति[29] नामक नगर में पहुँचे। उसके बाद एक दिन के मार्ग में उनकी भेंट मानव जाँघ (की हड्डी से निर्मित) तूती[30] बजानेवाले एक जोगी[31] से हुई, जो एक पेड़ के नीचे बैठे थे। (उस योगी ने) उस तूती (को) तीन बार मेरे सिर (के चारों ओर) घुमाकर बजाया[32]। (इसके बाद वह स्वयं) जंगल में कहाँ गये पता नहीं चला। (कुछ दिनों के) बाद मुझे (यह ज्ञात हुआ कि वे) रत्नसिद्ध नामक एक सिद्धिप्राप्त योगी थे, (जो) उस समय मुझे अधिष्ठित करने आये थे। (तत्काल) न पहचान पाने के कारण (बाद में मुझे) बहुत पश्चात्ताप हुआ—कहा। तब (उस जंगल से) कुछ ऊपर निकल आने पर एक नवप्रसूता व्याघ्री[33] से भेंट हुई, (तभी अकस्मात्) जंगल के बीच से तूती की ध्वनि

आयी और वह व्याघ्री पीछे को मुड़कर चली गई, तब पता चला कि वह (ध्वनि योगी के) आशीर्वाद का संकेत था--(यह) जानकर मेरे मन में (उनके प्रति) अगाध श्रद्धा (एवं भक्ति) उत्पन्न हुई--कहा। तब वहाँ से आगे आने पर बहुत से व्यापारियों से (उनकी) भेंट हुई। (उन लोगों से) भिक्षा माँगने पर बहुत (सारे) चावल दान में मिले। एक रात (वे उन) व्यापारियों के यहाँ (यानि डेरे में) सोये। (उन लोगों से) आगे (की जगहों का) अच्छी (तरह) परिचय पूछकर (अगले दिन) सूर्य तपने (यानि दोपहर) तक चलकर वे कश्मीर (जनपद) के कलपत[34] नामक नगर में पहुँचे। (वहाँ) शुरू में कश्मीरी बच्चों ने एकत्र होकर (हमारा) स्वागत किया। (बाद में) बिना दाड़ी मूँछवाले (अपूर्व) शरीर के पहरावेवाले इस नये आदमी को देखो-कहकर मज़ाक करने लगे[35]। उसके बाद एक वृद्ध गृहस्थ से आवास लेकर कुछ दिन (हम) वहाँ ठहरे। एक दिन नगर के मध्य (हम) भिक्षाटन करने गये, (तो, वहाँ हमारी) भेंट एक वृद्ध ब्राह्मण से हुई। उसने (मेरी) हस्तरेखा देखी और बिना कुछ बोले ही (उस) ब्राह्मण[36] ने (अपने) घर जाकर, एक चांदी की धूपदानी फूलों से पूर्ण भरकर (मुझे) अर्पित करते हुए प्रणाम किया। (मेरा) पल्ला पकड़कर स्वस्तिवाचन (करने के बाद) --"आप अनेक जन्मों में (पुण्य)सम्भार संचित किये हुए (शुभ) कर्मोंवाले (=भाग्यवान) (व्यक्ति) हैं। इस जन्म में भी (आप) बहुत सारे धर्मों का ज्ञान पाकर प्राणियों का बहुत उपकार करने वाले होंगे--(ऐसी उन्होंने) भविष्यवाणी की। इसके बाद (उन्होंने) चिन्तामणि नामक जंघाचारिक[37] अववाद से सिद्धि प्राप्त की।

**विद्या-अध्ययन**

उसके बाद (वहाँ से आगे चलकर महानगर भीनधार को देखा, तो) उस नगर की परिधि (अत्यन्त) विशाल होने से (रात्रि में आकाश के) तारे भी भूमि पर उतरकर मनुष्यों के साथ रहते हुए से लगे[38]। तत्पश्चात् (वे) तमलसनति में पहुँचे। (वहाँ पर उन्होंने) महापण्डित श्रद्धाकर वर्मा[39] का दर्शन किया। (उनसे उन्होंने) धर्मोपदेश की याचना (यानि अध्यापन के लिए प्रार्थना) की। (और उन्होंने) स्वीकार किया। वहाँ रहकर उन्होंने दो वर्ष में योगतन्त्र और (उससे सम्बद्ध) साधनाविधि आदि अनेक धर्मों का श्रवण किया। (इसके अतिरिक्त उन्होंने) अनेक पंडितों से भी अनेक धर्मों का श्रवण, मनन तथा अभ्यास किया। इसके बाद (जब उन्हें स्व-) देश लौट आने की इच्छा हुई (तो एक रात) स्वप्न में (ऐसा कहते हुए सुना)-भोट (देश) के एक आदमी ने समुद्र द्वीप से बहुत मणि रत्न प्राप्त किया है, (किन्तु उसने) एक चिन्तामणि रत्न पीछे छोड़ रखा है। वह (चिन्तामणि रत्न) महाभट्टारक नाड़पाद[40] के हाथ में है।"--इतना कहते ही (वे) नींद से जाग उठे। (प्रातः होने पर उन्होंने) पंडित श्रद्धाकर वर्मा को (उक्त) वृत्तान्त (के सम्बन्ध में) कहा, तो उन्होंने कहा, 'यदि ऐसा है तो, महाभट्टारक नाड़पाद के पास जाना चाहिए। वे एक ही जन्म तथा शरीर में बुद्धत्व प्राप्त (करानेवाले) अववाद के ज्ञाता हैं।

### नाड़पाद से विद्या अध्ययन

गुरु की आज्ञा मिलते ही (उन्होंने) सोचा, "सिद्धि का पहला (सोपान) गुरु की आज्ञा है-कहा जाता है।" कल (रात) का स्वप्न भी अच्छा था, (अतः मुझे जाना चाहिए।)—(ऐसा सोचकर वे) उत्तर दिशा में (स्थित) श्री फूलहारी नामक नगर में गये। शीघ्र (ही) भट्टारक नाड़पाद का दर्शन (प्राप्त) कर (उनसे) अधिष्ठान एवं अववाद देने के लिए प्रार्थना की (तो उन्होंने भी) अनुज्ञा (=स्वीकृति) प्रदान की। सर्व प्रपञ्चरहित गम्भीर सहज तत्त्व (से सम्बद्ध) विशिष्ट अववादों का परिचय, अधिष्ठान (आदि) अनेक (उपदेशों) का श्रवण किया। इसके बाद उपदेशों की समाप्ति पर गुरु को (विदाई) प्रणाम करके पुनः वापस लौट आते (समय पहले आये) मार्ग में पंडित कमलगुप्त का दर्शन हुआ। (उनसे भी उन्होंने) अनेक अववादों का श्रवण किया। पहले अपने गाँव में देखी गई (उपर्युक्त भारतीय) पुस्तक (जिसको वे तत्काल नहीं समझ पाये थे) में 'स्वर्ण प्रभावती' नामक डाकिनी की एक गम्भीर साधना-विधि विद्यमान थी, वे पण्डित उसके (भी) ज्ञाता थे, उनसे (उन्होंने उसे) सीखा। पहले (अपने गाँव में) भविष्यवाणी करनेवाली (वह) डाकिनी (वही थी, जिसने तब से लेकर) माँ और बहिन (के रूप में उनकी) सहायता की थी।

### पूर्वी भारत यात्रा

इसके बाद कश्मीर (प्रवास में) कितने वर्ष हुए हैं, गणना की। (तब तक) सात वर्ष हो चुके थे। अब, माता-पिता से मिलने जाना चाहिए, सोचकर (उन्होंने) अववाद की सारी पुस्तकों को पीले भोजपत्र पर लिखकर (उन्हें) भारतीय पुस्तक (का आकार) देकर, जाने के लिए सोचा तो, (उन्हें) पहले (स्व—) देश में भविष्यवाणी के समय भारत के पूर्व से पश्चिम सभी जगहों को जल की भाँति (अपने चरणों से) स्पर्श करो (जो) कहा था, उसका स्मरण हो आया। (तब उन) सारी पुस्तकों को पंडित (श्रद्धाकर वर्मा) के हाथ में रखकर (पुनः वे स्वयं) पूर्वी भारत गये। कश्मीर में रहकर भाषा अनुवाद करके धर्म ग्रहण करना पाँचवाँ मुद्दा (समास)।

जंघाचारिक सिद्धि के ज्ञाता होने से (वे शीघ्र ही पूर्वी भारत जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने) भारतीय उपाध्याय जिनमित्र, उपाध्याय ज्ञान, उपाध्याय शीलेन्द्र बोधि आदि अनेक पंडितों से धर्म (श्रवण के लिए) प्रार्थना की। त्रिविध-पिटक आदि मातृका (प्रज्ञापारमिता), विस्तृत (शत साहस्रिका), मध्यम (विंशति साहस्रिका प्रज्ञापारमिता) (संक्षिप्त) अष्टसाहस्रिका (प्रज्ञापारमिता), महाकारुणिक (आर्यावलोकितेश्वर से सम्बद्ध) सूत्र, तन्त्र (आदि के) अनेक अववादों का श्रवण करते हुए (उन्होंने) (संस्कृत से भोट भाषा में) अनुवाद किया। अमुक-अमुक उपाध्यायों एवं पण्डितों से अमुक-अमुक धर्म ग्रहण किया है—इत्यादि (का विवरण) यहाँ पर शब्द बाहुल्य के भय से नहीं लिखा गया है।

## स्वदेश की ओर

इसके बाद (वे पूर्वी) भारत से कश्मीर वापस लौट आये और पंडित श्रद्धाकर वर्मा से (पहले रखी) पुस्तकें ग्रहण कीं। (जितनी पुस्तकें उठा सकते थे उतनी) उठाकर (शेष जो पुस्तकें) उठा नहीं पाये (उन्हें श्रद्धाकर वर्मा) के हाथ में ही रख स्वयं (स्व-) देश लौटे। तब तक भारत और कश्मीर भ्रमण (करते हुए उन्हें) दस वर्ष हो चुके थे। वहाँ से (वे जंघाचारिक सिद्धि के द्वारा) छह दिन में ही (अपने देश) क्यु-वङ-पहुँचे तो, (उन्हें मालूम हुआ कि) उनके पिता नहीं रहे हैं, (वे) एक वर्ष पूर्व ही (स्वर्ग) सिधार चुके थे। 'पूर्वी भारत न जाकर कश्मीर से (ही मैं) लौट नहीं आया (ऐसा) सोचकर (मुझे बहुत) पश्चात्ताप हुआ'—कहा। उसके बाद उन्होंने पिता के हित के लिए 'दुर्गतिपरिशोधन' (तंत्र विधि के अनुसार उसके) सात मण्डल बनाये।

## पेकर दमन

पुनः वहां से पु-हङ्स[41] जाते समय भोट (देश का) एक गेशे (कल्याण मित्र) वीरण (नामक) तृण के अग्र भाग पर पर्यङ्कबद्ध बैठे मिले। (उनके इस चमत्कार के कारण) सभी (स्थानीय) लोग (उनके प्रति) श्रद्धा तथा सत्कार प्रकट कर रहे थे। उस समय गुरु अनुवादक ने विचार किया, तो (उन्हें) मालूम हुआ (वह) पे-दूकर (पेकर) नामक अमानुषी की ऋद्धि थी। (उसके बाद) एक महीने (तक) साधना करके (वे पुनः) उसके पास गये और (अपनी) तर्जनी दिखायी तो (वे कल्याण मित्र) भूमि पर (उल्टे सिर) गिर पड़े। इसके बाद (स्थानीय लोग) महानुवादक (के प्रति) श्रद्धावान हो गये। महागुरु ल्ह-ल्दे-बृचन (ल्ह-दे-चन)[42] ने पंडित प्रज्ञाकर, श्रीमित्र, पंडित शुभशील आदि अनेक शीलवान विद्वानों को (अपने देश गुगे) आमन्त्रित किया। (उन देश) आये (विद्वानों से) प्रज्ञापारमिता आदि अनेक धर्म (शास्त्रों का) श्रवण करते हुए ( उन्होंने भोटभाषा में) अनुवाद किया। संक्षेप में पचहत्तर पंडितों के (श्री-) मुख से अनेक (प्रकार के) धर्म ग्रहण किये।

## विहारों का निर्माण

(उसके बाद) महागुरु ल्ह-दे के (अनुरोध पर वे) उनके मुख्य पुरोहित तथा वज्राचार्य बने। गोन्पा की जगह पु-हङस के संस्थान और (एक सौ आठ) विहारों का निर्माण करना (भी) स्वीकार किया। इसके बाद महागुरु ल्ह-दे ने (उनसे) ख्व-च्चे (नामक स्थान) के विहार का निर्माण करने के लिए प्रार्थना की। (और) महागुरु बोधिसत्त्व श्रीज्ञानप्रभ[43] ने गुगे के थो-ग्लिङ[44] (थो-लिङ) (नामक स्थान) में (चार द्वीप एवं आठ) उपद्वीप (यानि) बारह द्वीप खण्ड के (व्यूहवाले) विहार का निर्माण किया। द्मर-युल[45] (मर-युल=लोहित देश) में अर-म (अरमा)[46] (नामक स्थान के विहार) का निर्माण किया। उन तीनों (विहारों की) नींव एक ही दिन में रखी गई। उस तरह (का कृत्य करना) भारत से भोट (देश) आना इस बीच में (कुल) बारह वर्ष व्यतीत हो गये थे। इसके बाद (जब) गुरु महा अनुवादक पु-हङस से नीचे नहीं आये (तब तक)

कनिष्ठ अनुवादक लेगस-पइ-शेस-रब (=सुप्रज्ञ) ने स-स्क्य (साक्या) तक के क्षेत्रों में अनुवाद कार्य सम्पन्न किया। इसके बाद (महा अनुवादक) क्यु-वङ पधारे। (वहाँ उन्होंने अपनी) माँ की निरोगिता एवं आयु संवर्धन के लिए अमितायु के सात मण्डलों का निर्माण किया। (इससे पूर्ण) निरोगता के साथ माँ की आयु में आठ वर्ष की वृद्धि हुई[47]। (इसके बाद उन्होंने) पु-हङ्स के ख-छर, गुगे के थो-लिङ और मर-युल के ञर-मा (सहित) तीन विहारों का निर्माण (कार्य समाप्त) कर (उन तीनों की प्राण) प्रतिष्ठा भी एक ही दिन में (सम्पन्न) की। बाद में (जहाँ) पु-हङ्स के लोगों ने, 'महानुवादक ने यहीं रहकर विहार निर्माण किया'—कहा। (तो वहीं) गुगेवालों ने (वे) यहीं रहे—कहा। मर-युल के लोग भी वैसा ही कहने लगे। (इस सम्बन्ध में जब) महानुवादक को पूछा गया, तो उन्होंने 'उन तीनों (विहारों के निर्माण तथा प्रतिष्ठा) में मैं स्वयं था। वे सब लोग सही (कह रहे) हैं।'—कहा।

**दूसरी बार कश्मीर यात्रा**

इसके बाद महागुरु बोधिसत्त्व (ज्ञानप्रभ) ने, गुरु महानुवादक से कश्मीर में (जो) ग्रंथ (पड़े) थे, (उन्हें) लेने तथा दक्ष देव शिल्पकारों (=मूर्तिकारों) को लाने के लिए कहा। (उन्होंने कश्मीर) जाना स्वीकार किया। गुरु बोधिसत्त्व ने कहा, 'वैसे तो गुरु (महानुवादक) को (कश्मीर) भेजने के लिए अश्व हाथी[48] भेंट किये जा सकते हैं, (किन्तु) भारत (जाने का मार्ग अत्यन्त) संकरा होने से (वे) निकल (यानि पार) नहीं कर पाएंगे। (यदि) सोना, चाँदी भेंट करें (तो भी देश-दूरी के कारण वे उन्हें) उठा नहीं पायेंगे। अतः पाँच मेधावी बालक उपस्थापकों (=शिष्यों)[49] (के रूप में) और अष्टविध मूल्यवान अस्थि विदाई भेंट के रूप में प्रदान की।

**अवलोकितेश्वर की प्रतिमा का निर्माण**

गुरु (महा—) अनुवादक ने सोचा—'मेरे धार्मिक अध्ययन (करके) प्राणि (मात्र) के हित में कार्य करना ये सब किन की कृपा है। (यह मेरे) माता-पिता की कृपा है। अतः कश्मीर में पिता की इच्छा पूर्ति के लिए (एक) प्रतिष्ठान (=मूर्ति) विशेष का निर्माण करना चाहिए—ऐसा सोच करके (अपने साथ) बीस औंस मात्र स्वर्ण लेकर चले। (स्वदेश से) वे कश्मीर पहुँचे। (वहाँ चन्दा के रूप में) पीतल माँगने पर बहुत (सारा पीतल) देखने (को मिला)। उसे लेकर भिधक[50] नामक (एक) दक्ष शिल्पकार से उन्होंने अपने पिता के काय परिमाण के बराबर महाकारुणिक (आर्यावलोकितेश्वर) की प्रतिमा का निर्माण करवाकर पंडित श्रद्धाकर वर्मा से ही (उसमें प्राण) प्रतिष्ठा करवायी। (इस उपलक्ष्य में) पाँच औंस स्वर्ण से खुशी-उत्सव[51] मनाया। (शेष) पाँच औंस स्वर्ण शिल्पकार को दक्षिणा में दिया।

**अवलोकितेश्वर के साथ स्वदेश वापसी**

एक औंस स्वर्ण से मजदूर[52] तैयार किया और (मूर्ति को) रथ द्वारा कश्मीर से भोट देश को लेकर चले। पहले (अपने) देश से आने (के बाद) तेरह महीने में

देवप्रतिष्ठान के साथ (वे पुनः अपने देश) ख्व-च्रे गोखर पहुँचे। (वह देव प्रतिष्ठान) अब भी गोखर (के विहार में) ही विद्यमान है।

कश्मीर में शिष्यों के नेतृत्व करने (तथा) अवशिष्ट धर्म ग्रहण करने में छह वर्ष लगे। इसके बाद बत्तीस शिल्पकारों[53] के साथ (वे) भोट देश में आये। तब (वे) महागुरु ज्ञानप्रभ अस्वस्थ हैं, सुनकर (उनका) दर्शन करने के लिए गये (किन्तु वे) उनका दर्शन नहीं (कर पाये) (क्योंकि तब तक) वे स्वर्ग सिधार चुके थे[54]। धातुपूजा और दुर्गतिपरिशोधन (संस्कार) में जाकर उसकी विधि (स्वयं महानुवादक ने) सम्पन्न की।

**विभिन्न स्थानों में विहारों का निर्माण**

महागुरु ल्ह-दे (और) महागुरु बोधिसत्त्व (ज्ञान प्रभ) ने (गुरु महानुवादक जी को जो गाँव भेंट किये, (वही उनके) इक्कीस प्रतिष्ठान हैं। उन इक्कीस गाँवों के प्रतिष्ठानों में एक वर्ष के भीतर ही (उन्होंने) सूत्रसंग्रह[55] (=धारणी संग्रह ग्रंथ) की तीन (तीन) प्रतियों, शत साहस्रिका (प्रज्ञापारमिता ग्रंथ) की सात प्रतियों के साथ पूजा सामग्रियों की भी व्यवस्था की। संक्षेप में (बुद्ध के) काय, वाक् (तथा) चित्त से सम्बद्ध अपरिमित (प्रतिष्ठानों) की सेवा की। उसके बाद (राजघराने के लोगों ने) ख्व-च्रे के गोखर में विहार बनवाने के लिए (गुरु महानुवादक से) प्रार्थना की। (प्रार्थना को स्वीकार करते हुए ख्व-च्रे में) पिता (से सम्बद्ध) तेरह भाइयों[56] के विहारों (के साथ अन्य विहारों) की (भी) नींव एक ही दिन में रखने की बात हुई, पर गुरु अनुवादक के मन में 'यदि मेरे विहार की नींव पहले रखी जाय तो बाद में सभी विहार (बहुत दिन तक) स्थिर रहेंगे—ऐसा विचारकर (उन्होंने) एक दिन पहले ही अपने विहार की नींव रख दी। अन्य पिता (से सम्बद्ध) भाइयों ने ईर्ष्या के कारण अनुवादक के विहार से (अपने विहार) ऊँचे बनवाये। तब शिल्पकारों को (विहारों के कार्य में) अलग-अलग नियुक्तकर (विहार) निर्माण (कार्य को सम्पन्न) किया। इसके बाद (गुरु महानुवादक ने अपने) जन्म स्थान क्यु-वङ के रदनि में 'प-रू'[57] मात्र का एक विहार निर्माण करने का विचार किया।

**जलमति को प्रतिज्ञा में आबद्ध करना**

स्मन-मृजलमति (मन-जलमति) नामक (एक) दुष्ट (अमानुषी) ईर्ष्या कर रही है—समझकर (उस वर्ष) सर्दियों में ग्यम-शुग[58] (ग्यम-शुग) में साधना की और गर्मी में साधना पूरी करके क्यु-वङ में आकर तीन द्रोण बीज खपनेवाले (एक) छोटे से खेत में 'श्री गुह्यसमाज' के मण्डल का निर्माण किया और मध्य में (एक) बड़ा सा होम कुण्ड चिनवाकर हवन का आयोजन किया तो (जलमति ने) साक्षात् (रूप में सामने) आकर 'प्राणहृदय'[59] अर्पण किया। तब गुरु अनुवादक ने (अपने शिष्यों से) कहा, 'उपस्थापको! क्षणभर (के लिए) ढोल[60] (आदि वाद्ययन्त्र) न बजाकर तुम सब (अपने-अपने) आसन पर (ही) बैठे रहो।'—(ऐसा) कहकर वे (स्वयं) खेत के ऊपरी भाग में गये। (वहाँ पर उन्होंने) मन-जलमति के सामने की एक दो जटा काटी

(जिसकी लम्बाई) दो व्याम[61] थी—ऐसा कहा जाता है। इसके बाद उस विहार में (उन्होंने स्थायी रूप में) श्री गुह्य समाज के मण्डल का निर्माण किया। (उसमें बुद्ध के) काय, वाक्‌चित्त का (प्रतीक) आस्थान और पूजा के अनेक उपकरण रखे गये।

इसमें विशिष्ट आस्थान हाथी दांत (से निर्मित) महाकारुणिक (की प्रतिमा है जो) वितस्तिभर[62] (की है), जिसे देखकर (कभी भी तृप्ति नहीं होती ), एक है। बोधिवृक्ष (की लकड़ी से) निर्मित श्री हे-वज्र (की एक प्रतिमा) है। वाक् के आस्थान (के रूप में) किसी भारतीय वृक्ष (विशेष) पर भारतीय लिपि में लिखित वाक् (यानि वचनों की) एक पोथी रखी है। इन सबको विहार से (बाहर) न निकालें। (यदि ये विहार से बाहर) निकाले गये (तो) बाद में मानव समुदाय का अनिष्ट होगा—(यह) कह करके मन जलमति को (वहाँ की) रक्षिका (के रूप में) नियुक्त किया।[63]

**विहार निर्माण के कुछ स्थलों के नाम**

अन्य भी पु-हङ्स के 'बूजेस-चेर' (जेस-चेर)[64], ख्व-चे का गोखर, स्पीति के लरि[65], र्त-पो[66], ति-रि[67], जद-वङ, स्नेहु, (रोङ-छुङ के) तियग, छ़ङस-मेद, फोरि, ग्यङ-स्कुर (यङ-कुर) रि-ह्रि, ग्यु-लङ(ग्यु-लङ), खुनु में रो-पग[68], होपुलङ्क[69] तक विभिन्न स्थानों पर (महानुवादक ने) एक सौ आठ विहारों का निर्माण किया। अन्त में 'डिल-छुङ' नामक स्थान पर द्रोणभर का यानि सबसे छोटा विहार चिनवाने के साथ (विहारों) की एक सौ आठ (की संख्या) पूर्ण हो गई (साथ ही विहार निर्माण का) हिसाब भी वहाँ (तक) पूरा हो गया[70]।

रोङ-छुङ के अन्य विहारों का निर्माण भी (महा—) अनुवादक ने (ही) किया है। विशेषकर (पूजा—) प्रतिष्ठानवाले प्रत्येक गाँव में (उनके द्वारा निर्मित) प्रतीकात्मक एक-एक विहार विद्यमान है। उनके द्वारा निर्मित स्तूपों (की संख्या तो) अपरिमित है। संक्षेप में (कहा जाये तो वे) प्रतिदिन दस धर्मचर्या[71] निरन्तर (करते थे)।

मेधावी पाँच बालकों में से दो की कश्मीर में गर्मी से मृत्यु हो गई। अब (जो) तीन (बचे) थे (उनमें) मङ-वेर के अनुवादक ब्यङ-छुब-शेस-रब (जङ-छुब-शे रब= प्रज्ञाबोधि), स्मे (मे) के अनुवादक दूगे-ब्लो (गे-लो=कुशलमति), हूज़ङ (ज़ङ) के अनुवादक रिन-छेन गूजोन-नु (रिन-छेन-जोन-नु=रत्नकुमार) के साथ तीन थे।

**जलसर्प आनयन**

(एक बार उन्होंने) होपु[72] से तीन 'जलसर्प'[73] पकड़कर गेंडे (की खाल से निर्मित) सन्दूक, (जिसको भोट भाषा में 'से-डोम'[74] कहा जाता है) में डालकर भिजवाते हुए (अपने उपस्थापकों से) कहा—(जब तक) क्यु-वङ के ऊपरी भाग तक न पहुँचे (तब) तक (इस सन्दूक का) ढक्कन न खोलना। (जब वे लोग) सुमनम के डति[75] (नामक स्थान) में (पहुँचे तो,) उपस्थापकों ने सन्दूक का ढक्कन खोल दिया और एक सर्प (सन्दूक से) निकल भाग गया। (पुनः) एक को पकड़ करके भेजते हुए (कहा)—इसे कल की भाँति भागने न देना, क्यु-वङ के ऊपरी भाग में निश्चित (रूप में) पहुँचाने

के बाद ही ढक्कन खोलना। (किन्तु) नाग द्वारा उपस्थापकों के हृदय परिवर्तन करा देने से सु (पु) के तुग-बृतङ (तुग-तङ[76] नामक स्थान) में (सन्दूक का ढक्कन दोबारा) खोलकर सर्प को भागने दिया। गुरु महानुवादक के मुख से—हे पुत्रो! तुम लोग दो बार सफल नहीं हुए। (लगता है) प्राणियों के पुण्य (यानि भाग्य) में भी यह सिद्ध नहीं है। (यदि हम लोग इन्हें) एक (ही जगह तक) ले जाने में सफल होते तो (भविष्य में) वहाँ सौ से (भी) अधिक घरानोंवाला (एक) गाँव बसना था। अब आगे (वह गाँव एक) खराब, सूखे तालाब के अवशेष से (अधिक) नहीं होगा।

**विशेष साधना**

अन्य भी, पूर्वी और पश्चिमी भारत से अनूदित सद्धर्म (ग्रंथों) की संख्या का (उल्लेख) धर्मों का क्रमबद्ध सूची पत्र[77] में स्पष्ट किया है। अन्य साधना करने की विधि (=स्थान) पु-हङस के बृशेस-जेर (शेस-जेर के नीचे और होपु-लङका से ऊपर) के मध्य स्थित विभिन्न स्थानों पर रहे। (पर विशेष रूप से महानुवादक) ग्यम-शुग (नामक स्थान) में रहते समय पु-हङस के ख-छर से खाद्य सामग्री[78] लेते थे। (खाद्य सामग्री लेने के लिए कोई भी) तगड़ा शिष्य (रात खुलते ग्यम-शुग से चलकर ख-छर से सामग्री लेकर पुनः) गोन-पा में सब्जी उबलने (यानि नाश्ता) से पहले पहुँच जाता था—ऐसा कहा जाता है।

**अतिशा से भेंट**

ऐसा करते (जब गुरु महानुवादक) 87वर्ष[79] के हो गये तो, राजपरिवार के (भदन्तज्ञान-प्रभ) ने ल्ह गृचिग (ल्ह-चिग=दीपंकर श्रीज्ञान[80]) को (गुगे के) राजमहल आमन्त्रित किया। उस समय पु-हङस के बृजेस-चेर (जेस-चेर) में (महानुवादक ने उनका) दर्शन किया। जो-वो (अतिशा) ने कहा, 'महानुवादक! आपने बहुत से धर्मों को जाना है और विद्वान् अनुवादक की प्रसिद्धि भी पायी (है।) अतः अब आप (मेरे अनुवादक बनें।) गुरु अनुवादक ने कहा, 'मेरी अवस्था वृद्ध होने के कारण (मेरा) अनुवादक बनना सम्भव नहीं है। शब्द (उच्चारण) शुद्ध न (होने से) धर्म में विकृतियाँ आने लगेंगी।' (यह) कहकर स्वीकार नहीं किया। जो-वो-छेन-पो ने कहा, 'मेरे (पास) हृदय होने पर भी जुबान नहीं है।'—कहते हुए अपनी खिन्नता व्यक्त की। तब उनके अनुवाद (का कार्य) छुल-ख्रिमस-र्ग्यल-व (छुल-ठिमस-ग्यल-वा=जिनशील) ने किया।

**कठोर साधना**

इसके बाद महानुवादक ने पु-हङस के जेर (नामक) विहार में पूरे एक वर्ष (तक साधना में बैठने) की प्रतिज्ञा की। द्वार के बाहरी-भाग की (दीवार) पर शंख अक्षरों में उन्होंने— 'मुझमें यानि मेरे मन में अगले वर्ष के इस समय तक क्षणभर के लिए (भी यदि) क्लेश (चित्त) उत्पन्न हुआ तो डाकिनियाँ (मुझे) दण्डित करें— लिखा। उसके भीतरी भाग पर रजत-अक्षरों में 'अगले वर्ष के इस समय तक (यदि) मैं क्षणभर के लिए भी बोधिचित्त से विलग हुआ तो डाकिनियाँ (मुझे) दण्डित करें—लिखा। देवालय

के भीतरी भाग में स्वर्णाक्षरों में—'अगले वर्ष के इस समय तक (यदि) मुझ में क्षणभर के लिए भी अव्याकृत चित्त प्रवृत्त हुआ तो भी डाकिनियाँ (मुझे) दण्डित करें'—लिखा। इस प्रकार क्रमशः तीन मुद्रांकित प्रतिज्ञा करके भावना (यानि साधना) में (महानुवादक) एकाग्र हो गये। इसके बाद (उनकी) सभी प्रतिज्ञाएँ पूर्ण होने से (उन्हें) निष्प्रपञ्च धर्मकायोपम समाधि की प्राप्ति हो गई।[81]—इत्यादि अनेक विशिष्ट स्थानों में उन्होंने अनेक साधनाएँ की।

### शिष्यों में क्षेत्र बंटवारा

इसके बाद तीनों कनिष्ठ अनुवादकों (में से) मङ वेर के अनुवादक जङ-छुब-शे-रब (=प्रज्ञाबोधि) को तियग (नामक क्षेत्र) दिया। द्ज़ङ (ज़ङ) के अनुवादक रिन-छेन-ग्ज़ोन-नु (रिन-छेन-जोन-नु=रत्नकुमार) को छङस-मेद (नामक क्षेत्र) दिया। स्मे (मे) के अनुवादक द्गे-ब्लो (गे-ब्लो=कुशलगति) को रि-ह्रि (नामक क्षेत्र) दिया।

### जन्म की घटना का अर्थ

इस तरह (का महान कार्य करनेवाले) पुरुषोत्तम के पैदा होते समय माँ के दायें कंधे पर एक मोर के उतरने (का अर्थ था) उनका काय अपरिमित सुन्दर होना। बायें कंधे पर कोयल के उतरने (का अर्थ था) (उनका अत्यन्त) मधुर धर्मघोष करने वाला होना। शीश पर तोते के उतरने (का अर्थ था) उनका भोट-भारतीय (दोनों) भाषाओं का अनुवाद करनेवाला होना।

### लेखक का आह्वान

इस तरह के विशिष्ट (महा—) पुरुष (से सम्बद्ध धार्मिक) सम्पत्तियों (के विषय) में बाद के लोगों द्वारा (यदि) सावधानी न बरती गई तो, गरीबी और दरिद्रता के साथ ही (उनका) वंश समाप्त[82] होने का भी सन्देह है। ऐसा क्यों कहें तो महानुवादक शाक्य मुनि बुद्ध के निर्मितक (=अवतार) हैं। (वे) सिद्धिलब्ध (साधारण) पुद्गल नहीं हैं। इसलिए (उनकी धार्मिक) धन सम्पत्तियों (के उपयोग में) सावधानी बरतना आवश्यक है। अन्यश्च उन गुरु (महा—) अनुवादक को कश्मीर में जंघाचारिक चिन्तामणि की सिद्धि प्राप्त करके, कश्मीर से पिता के (पुण्य) के लिए देव प्रतिष्ठान (=देव मूर्ति) ख्य-चे के गोखर तक, रथ पर आमन्त्रित करने (यानि ले जाने) में तीन महीने की देरी (यानि समय) लगा। गुरु (महानुवादक) स्वयं (हो) तो, (वहां से) छह दिन में जाते (और छह दिन में) (वापस आते) थे।

### जिस जगह से (उन्होंने) खेचर को प्रस्थान किया

कुछ लोगों का कहना है—ल्हि-मइ-छु-मिग (=लिमइ छुमिग) के देवतालाब (स्थित) शिला (पट)[83] के ऊपर से निरुपधिशेष (निर्वाण) में प्रस्थान किया। (किन्तु) वहाँ पर रहकर गुरु ने एक वर्ष (तक) साधना की थी, (वहाँ) से (वे) खेचर को प्रस्थान नहीं हुए थे। अच्छा तो कहाँ से (वे) खेचर को गये? ख-छे-के रि-वेर-गो[84] में (भोट

पंचाग के अनुसार) भेड़ वर्ष में (जब वे) 98 वर्ष की आयु[85] के हो गये थे (तब) उस (वर्ष की) सर्दी के अन्तिम मास की 17वीं तिथि, आश्विन नक्षत्र (के योग) में (उनका खेचर) प्रस्थान हुआ। (साधारण लोगों के लिए) पु-हड्स के 'ल्हि-म-यि-च-से (नामक) गुफा, शि-वर-ग्यङ-स्कुर (शि-वर-यङ-कुर) गुफा तथा ख-छे के गोखर के रि-वेर-गो (आदि स्थानों से भी उन्होंने) खेचर को प्रस्थान होने का भाव दिखाया।[86]

## दाह संस्कार

क-बृजि-गृदुङ-बृग्यद (=चार स्तम्भ आठ बीम) (के रूप में ख्यात) छात्र-शिष्यों एवं पुत्रों ने (उनके) शरीर धातु का दाह संस्कार किया। (यों तो) शरीर धातु का द्रव्य हरिद्रा के फल मात्र तक भी प्राप्त नहीं हुआ। पर लोक (व्यवहार की) अनुरूपता मात्र (के लिए) रत्ती फल के बराबर तीन अत्यन्त लाल (रंग की) अस्थियाँ प्राप्त हुईं। (उस समय) आकाश से मेघ (गर्जन) के समान वाद्ययन्त्रों की विविध ध्वनियों के घोष के साथ वे अस्थियाँ भी खेचर को प्रस्थान हो गईं (यानि उड़ गईं)।

## अमानुषियों को धर्मोपदेश

इसके बाद एक महीने के लगभग, जो धर्म में श्रद्धा रखते थे। (उन) अमानुषियों तथा आज्ञाबद्ध इस लोक के प्रेतों द्वारा (उस स्थान में) प्रत्येक रात्रि विलाप करने की (आवाज) होने लगी। पूर्णिमा के दिन आकाश में इन्द्रधनुष तथा फूलों की भारी वर्षा हुई। उसके बाद से विलाप की आवाज़ें भी बन्द हो गईं। जो-वो- छेन-पो-ल्ह-चिग से-इस तरह का विशिष्ट लक्षण क्या है--पूछने पर, ल्ह-चिग ने कहा, 'उन महानुवादक बोधिसत्त्व ने दया भाव से प्रेत, राक्षस (आदि) अमानुषियों को आकाश से अनित्यता (आदि) धर्म की देशना से धर्म में प्रवृत्त किया है। इस समय (वे) महानुवादक पश्चिमी दिशा में (स्थित) सुखावती (बुद्ध क्षेत्र) में सुवर्णवर्मा (नामक) डाकिनी के आमन्त्रण पर चले गये हैं। (वहीं वे) भगवान अमिताभ के चरणों में बैठे हैं--कहते हुए उन्होंने उस दिशा की ओर हाथ जोड़े। (महानुवादक बोधिसत्त्व रत्नभद्र का जातक तपो प्रदीप जीवनी स्फटिक रत्नमाला नामक वृत्तान्त समाप्त हुआ।)

## परिणामना

मुनि शासन रत्नधर्म के निधि धारक, सुकर्मों के द्वारा दसों दिशाओं में प्रभा फैलानेवाले (उन) जिनपुत्रों को (मैं ज्ञानश्री) सादर अंजलिबद्ध (हो) जन्म-जन्मों में (उनके) चरण कमलों की पूजा करनेवाला बनूं......।[87]

गुरु महानुवादक की (स्फटिक) रत्नमाला वृत्तान्त नामक जीवनी को गुगे के ख्यि-थङ (खि-थङ[88]) वासी ज्ञानश्री ने थो-लिङ में लिपिबद्ध किया। इसे लिखने (मात्र के) पुण्य से प्राणिमात्र पश्चिमी दिशा में (स्थित) सुखावती बुद्ध क्षेत्र में पैदा हो (और) रत्नभद्र का पद शीघ्र प्राप्त हो।

## ग्रन्थगत आवश्यक पाद टिप्पणियाँ

1. मूल भोट पाठ में 'नमो रत्नगुरुभद्राय' है। द्र.सं.जी. पृ. 231, यहाँ हिन्दी अनुवाद में 'नमो गुरुरत्नभद्राय' क्रम रखा है।
2. म. जी. पृ. 55 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 101 में मर्दों की संख्या ग्यारह है। सं. जी. 232 तथा सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 104 पर यह संख्या यद्यपि दस बतलायी गयी है तथापि वहाँ मात्र नौ की ही चर्चा मिलती है। सं.जी. महा. पञ्ज. पृ. 148 पर मर्दों का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।
3. 'ख्व-चे' शब्द के ही अन्य तीन पाठ भेद--'ख-चे, ख्व-छर तथा ख-छेर' भी प्रचलित हैं। टुचि साहब ने हिमाचल प्रदेश के स्पीति में स्थित 'ल-लुङ' के आधार पर ही स्पीति स्थित 'काज़ा' गाँव को 'ख्व-चे' समझकर रत्नभद्र के पूर्वजों को कश्मीर से जोड़ने का प्रयास किया था, लेकिन बाद में इस गलती को अपनी Indo-Tibetica III-I, पृ. 7-8 पर सुधारते हुए पुनः इसे भोट देश के गुगे प्रान्त में स्थित गाँव को 'ख्व-चे' माना है।

   स्नेलग्रोव ने टुचि साहब के द्वारा सुधारे गये पाठ का अवलोकन न कर उनके पूर्ववत् पाठ को ध्यान में रखा है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I, P, 85, F-3
4. म. जी. पृ.-57, म. जी. स्नेलग्रोव, पृ.101 तथा सं. जी. महा. पञ्ज. पृ.-150 पर 'क्तु-जोर' के साथ 'छ' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु सं. जी. पृ.-234 तथा सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 104 पर यह शब्द उल्लिखित है। भान्जे तथा पोते आदि के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले 'छ-वो' का ही यह समास रूप है। यहाँ यह शब्द भान्जे के लिए प्रयुक्त हुआ है। सं. जी. इण्डो तिबेटिका-II, पृ. 104 पर 'क्तु-जोर' के 'जोर' का 'ज़ेर' हो गया है। इसे लिपिक का प्रमाद मानना चाहिए।
5. सं. जी. पृ. 234 पर पितामह के नाम ग्यु-स्य्र-स्तोङ-ब्च्रन (उच्चा. यु-डा-तोङ-चन) में 'ब्च्रन' के स्थान पर स्च्रन (उच्चा.चन) मिलता है। किन्तु म. जी. पृ. 57 तथा सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 150 पर उपलब्ध 'ब्च्रन' पाठ ही अधिक शुद्ध प्रतीत होने से हिन्दी अनुवाद में ब्च्रन कर दिया है।
6. स्क्यु-वङ (उच्चा. क्यु-वङ) और क्यु-वङ-इन दोनों रूपों में मात्र लेखन की ही भिन्नता है। यह गुगे प्रान्त का वह क्षेत्र है, जिसमें रत्नभद्र का जन्मस्थल 'रदनिस' (उच्चा. रदनि) स्थित है। 1959 से पहले किन्नौर के व्यापारी लोग खब, नमग्या, शिपकें-ला, शिपके गाँव, क्युकसो, सरकोङ, तथा ब्रोपचा से होते हुए सतलुज नदी को पार करके तियक के समीप सतलुज को पुनः पार करके 'रदनी' अथवा 'रणि' पहुँचते थे। रदनी का ही स्थानीय उच्चारण 'रणि' भी है।

7. स्नेलग्रोव ने रत्नभद्र की म. जी. का अंग्रेजी अनुवाद करते समय चोग-रोस (उच्चा. चोग-रो) को व्यक्ति विशेष मानकर रत्नभद्र की माँ को उसके परिवार के साथ जोड़ दिया है–"Mother was named Kun-bzang-shes-rab-bstan-ma of cog-Ro family." द्र. The cultural Heritage of Ladakh-IP-86. इसे देखकर लगता है कि स्नेलग्रोव ने टुचि साहब के Indo-Tibetica-II, P. 57 पर दिये पाठ को नहीं देखा, जिसमें उन्होंने "His mother Kun-bzang-shes-rab-bstan-ma of cog-ro" कहकर उन्हें चोगरो वासिनी बतलाया है।
8. म. जी. तथा सं. जी. के मूल भोट पाठ में रत्नभद्र की बहन के नाम के साथ 'कुन-स्रिङ' जुड़ा होने से स्नेलग्रोव ने रत्नभद्र की म. जी. के अनुवाद में उनकी बहन का नाम भी "Kun-Sring-Shes-rab-mtshomo" कर दिया है।–द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I, P.86.
   टुचि साहब ने Indo-Tibetica-II, P. 58 पर रत्नभद्र की बहन का नाम "Kun-Sring-Ses-mtsho" लिखा है। यहाँ उनके नाम में उन्होंने शेस-रब के 'रब' और छोमो के 'मो' दोनों का लोप कर दिया गया है, जोकि मूलभोट पाठ के अनुसार दोनों होने चाहिए।
   सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 151 पर उनकी बहन के नाम के साथ 'कुन-स्रिङ'—यह पाठ नहीं है। इसके साथ ही उनके अन्तिम नाम शब्द छोमो में स्त्रीलिंग बोधक प्रत्यय 'मो' का भी यहाँ उल्लेख नहीं है।
   उपर्युक्त विद्वानों ने 'कुन-स्रिङ' शब्द को उनके नाम का ही एक अंश मानकर 'कुन-स्रिङ-शेस-रब-छो-मो' समझ लिया है। वस्तुतः उनके नाम के साथ प्रयुक्त 'कुन-स्रिङ' नामांश नहीं है। इसका अर्थ 'सब की बहन' है।
9. यह महा अनुवादक के प्रव्रज्या के पूर्व का नाम है। बौद्ध परम्परा में प्रव्रज्या को एक नया जन्म माना जाता है और प्रव्रज्या के समय भिक्षु का नया नाम रखा जाता है। साथ ही भिक्षुओं की ज्येष्ठता उनके जन्म से नहीं प्रत्युत् प्रव्रज्या से मानी जाती है।
10. म. जी. पृ. 60 तथा स्तोत्र पृ. 130 पर छोटी चिड़िया ब्यिहु-छुङ (उच्चा. =जिउ-छुङ) के स्थान पर गरुड़ (ब्य-ख्युङ) पाठ मिलता है।
11. सन् 1027 में फुग-लोचावा के काल में पहली बार कालचक्र तन्त्र भोट देश पहुँचा। तब से इस देश का 60 वर्षीय प्रभात ईरा प्रारम्भ होता है। इसके अनुसार पिछली कालगणना करने पर रत्नभद्र के जन्म का वर्ष स-फो-र्त (उच्चा. स-फो-त=भू-पुंस-अश्व) में पड़ता है, जो सन् 958 में आता है। इसे Blue Annals, P. 68 तथा टुचि ने Indo-Tibetica-II, P. 25. भी स्वीकार किया है।
12. सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 105 पर शिशु को 'ख्येहु-मृदोग-मं-ब्यहि-मृदोङ

(स)–प-दङ-मिग-ह्द्र-व' (उच्चा.-ख्येउ-दोग-म-जइ-दोङ-प-दङ-मिग-डा-व) अर्थात् मयूर के पंख के रंग के समान रंग एवं नेत्रवाला बतलाया है। किन्तु म. जी. पृ. 61, सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 153 तथा सं. जी. पृ. 237 पर 'मृदोग-स्डो-व-ब्यहि-गृदोङ-प-दङ-मिग-ह्द्र-व (उच्चा. दोग-ङो-व-जइ-दोङ-प-दङ-मिग-डा-व) अर्थात् नीले वर्ण का खगमुखी (तथा) खगनयनवाला' कहा गया है।

13. देव-थेर-ङोन-पो के अनुसार रत्नभद्र को प्रव्रजित करनेवाले उपाध्याय का नाम ये-शेस-बृजङ-पो (उच्चा. ये-शेस-जङ-पो=ज्ञानभद्र) है। द्र. देव-थेर-ङोन-पो-1, पृ. 94.

    रत्नभद्र की अब तक उपलब्ध सभी जीवनियों में इनके उपाध्याय का नाम 'लेगस-प-बृजङ-पो (उच्चा. लेगस-पा-ज़ङ-पो=सुभद्र)' मिलता है। द्र. म. जी. पृ. 62, सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 154, सं. जी. पृ. 238 तथा सं. जी. इण्डो तिबेटिका- II पृ. 106.

14. भोट शास्त्रों में उड्डियान के लिए उ-र्ग्यन (उच्चा. उ-ग्यन) तथा ओ-र्ग्यन (उच्चा. ओ-ग्यन दोनों भोटरूप मिलते हैं।

    कुछ आचार्य वर्तमान उड़ीसा प्रदेश को ही उड्डियान मानते हैं। कुछ लोग कश्मीर और अफगानिस्तान के मध्य में स्थित एक भू-भाग को मानते हैं। इसी उड्डियान को महान आचार्य पद्म सम्भव की भी जन्मस्थली के रूप में जाना जाता है। सिद्ध पीठों में उड्डियान भी एक है।

15. स्नेलग्रोव ने रत्नभद्र की म. जी. पृ. 63 के भोटपाठ 'उ-र्ग्यन-नस- ब्योन-पइ-पन-डित-गृचिग-गि-युम-ल-गृदन-छुङ-ब्लङस-नस...बृज़ह-व-ब्रङस-प...(उच्चा. उ-ग्यन-नस-जोन-पइ-पण्डित-चिग-गि-युम-ल-दन-छुङ-लङस-नस...जा-व-डङस-प.)' के 'युम-ल' में सम्प्रदान के प्रत्यय 'ल' को अपादान का प्रत्यय 'लस' और रत्नभद्र को कर्त्ता मानकर "He was receiving small hospitality from the wife of Pandita, who had come from Uddiyana. ऐसा अनुवाद कर दिया है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh, पृ. 86. इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने रत्नभद्र की सं. जी. पृ. 238 पर इसी स्थल के भोटपाठ 'ओ-र्ग्यन-नस-ब्योन-प-यिन-ज़ेर-बइ-पण्डित-गृचिग-ल। युम-ग्यिस-गृदन-छुङ-ब्लङस-ते-बृज़ह-व-ब्रङस-प (उच्चा. ओ-ग्यन-नस-जोन- प-यिन-ज़ेर-बइ-पण्डित-चिग-ल। युम-ग्यिस-दन-छुङ-लङस-ते-जा-व-डङस-प)' पर विचार नहीं किया है। वे सं. जी. के आधार पर म. जी. के उपर्युक्त व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध पाठ को 'पंडित-गृचिग-ल-युम-ग्यिस (उच्चा. पण्डित-चिग-ल-युम- गिस)' अर्थात् पंडित को कर्म और युम (=माँ) को कर्त्ता मानकर अनुवाद करते तो मान्य होता। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 154 पर उपर्युक्त स्थल का भोटपाठ 'उ-र्ग्यन-नस-ब्योन-पइ-पण्डित-गृचिग-गिस-युम-ल-बृसोद-स्जोमस-ब्लङ (स)-स्ते-गृसोल-नस- बृज्युद-

पइ...छे(उच्चा. उ-ग्यन-नस-जोन-पइ-पण्डित-चिग-गित-युम-ल-सोद- ज़ोमस-लङ (स)-ते-सोल-नस-ज्युद-पइ...छे)' मिलता है। इसका अर्थ है—उड्डियान से आये एक पंडित ने (रत्नभद्र की) माँ को पिण्ड दान ग्रहण कराया (और) खाकर जाते समय...। उपर्युक्त भोटपाठ यद्यपि सही है, किन्तु इस स्थल के मूल भाव की दृष्टि से 'पण्डित-गृचिग-गिस' में करण के 'गिस' प्रत्यय और 'युम-ल' में सम्प्रदान के 'ल' प्रत्यय के स्थान पर क्रमशः सम्प्रदान प्रत्यय 'ल' और करण का प्रत्यय 'ग्यिस' यह पाठ होना चाहिए था।

तिब्बत के गुगे प्रान्त के आस-पास के क्षेत्रों की भाषा में प्रचलित गृदन-छुङ (उच्चा.दन-छुङ) शब्द खाद्यसामग्री या पिण्डदान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्नेलग्रोव इस शब्द को समझ नहीं पाये और उन्होंने 'गृदन-छुङ' का अनुवाद Small Hospitality (=संक्षिप्त अतिथि सत्कार) कर दिया।

16. म. जी. पृ. 64 पर इस स्थल के भोटपाठ पर दो-शल (=हार) के स्थान पर गृदु-वु (उच्चा. दु-वु=कंगन) पाठभेद है।

    म. जी. पृ. 64 तथा सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 155 पर इस स्थल के मूल भोट पाठ में स्त्री डमरू बजाती हुई पाठ भेद है। म. जी. पृ. 64 पर 'बायें हाथ में मुट्ठी भर फूलों की डाली ली हुई' पाठभेद है, तो वहीं सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 155 पर 'मुटठी भर फूल धारण किया हुआ पाठभेद है।

17. स्वप्न में लोहित वर्णा स्त्री की भविष्यवाणी के मूलभोट पाठ 'ग्यं-गर-शर-नुब-छु-बृज्यिन-ब्युगस-नस-नि (उच्चा. ग्य-गर-शर-नुब-छु- ज्यिन- जुगस-नस-नि)' का अंग्रेजी अनुवाद स्नेलग्रोव ने "Which spread like a Flood over India from East to West" किया है, जो भोटपाठ के मूलभाव से बहुत दूर चला गया है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I.P. 87.

18. सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 159 पर 'अ-पो' (=साथी भाइ) के स्थान में 'अ-फो' पाठ भेद है, किन्तु दोनों का अर्थ समान ही है।

19. कौड़ी, घोंघे, शंख आदि के वर्ग का एक कीड़ा है। इस कीड़े के अस्थिकोश को प्राचीन काल में विनिमय के साधन के रूप में भी लाया जाता था। द्र. वृ. हि. श. को. पृ. 273।

    हि. प्र. के किन्नौर आदि पहाड़ी क्षेत्रों में महिलाएँ इसे आभूषण के रूप में अपनी वेणी में पिरोकर पहनती हैं।

20. मूल भोट पाठ में कुल्लू के लिए 'ञुङति' और वहाँ के निवासियों के लिए 'मोन-प' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। भोटवासी अब भी कुल्लू को ञुङति तथा मनाली को 'दाणा' कहते हैं। ञुङति का अर्थ ज्ञात नहीं है, किन्तु मोन-प का अर्थ 'किरात' है।

21. हि. प्र. के सीमावर्ती जिला किन्नौर को भोटवासी 'खु-नु' और उसके निवासियों

को खु-नु-प कहते हैं। किन्नौर के स्थानीय लोग अपने देश को कनोरिङ् तथा अपने को कनोरेया करते हैं। यही कनोरिङ् शब्द कालांतर में भोट भाषा-भाषियों की जुबान में कनुरिङ्, कुनुरिङ् तथा खुनुरिङ् होता हुआ अंत में खुनुरिङ् में प्रयुक्त रिङ् के हट जाने से खुनु बन गया, प्रतीत होता है।

द्र. नेगी, विद्यासागर, पश्चिमोत्तर हिमालय के आरण्यक भेड़पालक : किन्नौर के संदर्भ में (एक सामाजिक—सांस्कृतिक अध्ययन); पृ. 4; केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2007.

22. हि. प्र. में स्थित लाहुल के लिए भोट शब्द 'गर-ज्य (उच्चा.गर-ज)' है। भोट ग्रंथों में लाहुल के लिए सर्वत्र 'गर-ज' शब्द आया है। गर-ज शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् 'गर-ज' को द्कर-ज्य (उच्चा. कर-ज) का अपभ्रंश मानकर 'सफेद-टोपी' भी अर्थ करते हैं। जो भी हो गर-ज को भोट ग्रंथों में 'गर-ज्य-म्खह-ह्ग्रोहि-ग्लिङ (उच्चा. गर-जा-ख्र-डोइ-लिङ=गर-जा डाकिनियों का देश)' माना गया है। लाहुल को यदि ल्ह-युल (=देवभूमि) का अपभ्रंश मान लिया जाये तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं माननी चाहिए। इसके साथ ही लाहुल सिद्धगुरु घण्टापाद की भी तपोभूमि रही है। द्र. के. अंगरूप, वि.भा. (द्वितीयाङ्क) पृ. 25, 1986.

23. सभी जीवनियों में रत्नभद्र और उनके साथी के एक महीने तीन दिन में करिक (उच्चा. करिक) पहुँचने का उल्लेख है, किन्तु सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 159 पर 'करिक' के स्थान पर 'केरि' पाठ है। यह लिपिक का ही प्रमाद लगता है।

24. महासंगल नामक पुल को पार करनेवालों के प्रसङ्ग में उपलब्ध जीवनियों में समानता नहीं है। म. जी. पृ. 68 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 103 पर 'लम (ब्रू?)-स्रुङ-मि-ब्स्रुन-प-ग्रोङ-ग्सुम-प(उच्चा. लम-सुङ-मि-सुन-प-डोङ-सुम-प= रूक्षमार्ग रक्षकों के तीन घराने)' पाठ है, किन्तु सं. जी. महा. पञ्ज. पृ 159, सं. जी. पृ. 243, सं. जी. इण्डो तिबेटिका-II, पृ. 108 पर 'मि-ब्स्रुन-प (उच्चा. मि-सुन-प= रूक्ष) यह शब्द नहीं है। सं. जी. महा. पञ्ज. में 'ग्रोङ-ग्सुम-प (उच्चा. डोङ-सुम-प=तीन घराने)' के स्थान पर 'ग्रोगस-म्छेद-ग्सुम (उच्चा. डोगस-छेद-सुम=तीन मित्र बन्धु)' लिखा है। स्नेलग्रोव ने म. जी. के उपर्युक्त वाक्यांश का अनुवाद 'an ill disposed toll-keeper and small community of three houses.' किया है। द्र. म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 87, फुट 9. ऐसा उन्होंने कर वसूलने वाले को तीन घराने वाले समुदाय का मुखिया मानकर किया है।

25. सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 159 पर पाँच सौ कौड़ी 'म्ग्रोन-बु-ल्ङ-ब्र्ग्य (उच्चा. डोन-बु-ङ-ग्य)' देने का उल्लेख है। अन्य जीवनियों में पचास है। इसमें लिपिक का प्रमाद प्रतीत होता है।

26. म. जी. पृ. 71 तथा सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 162 पर 'चार-पाँच द्रोण' के स्थान पर चार पाँच मुट्ठी 'स्पर-प-बृज्यि-त्ङ (उच्चा. परप-जि-ङ)' पाठ भेद है।

27. इस स्थल पर म. जी. पृ. 11 में 'द्रिन-लन-दु-सङ-ब्शेद-मृछोद-र्तेन-ब्र्ग्य-च्च (उच्चा. डिन-लन-दु-सङ-शेद-छोद-तेन-ग्य-च्च=प्रत्युपकार के लिए बाद में कभी सौ स्तूप तक)'—पाठ है। सं. जी. पृ. 245 पर 'द्रिन-लन-दु-सोङ-शेद-मृछोद-र्तेन-ब्र्ग्य-च्चम (उच्चा. डिन-लन-दु-सोङ-शेद- छोद-तेन-ग्य-च्चम=प्रत्युपकार (सम्पन्न) हो जाने के लिए सौ स्तूप तक)'—पाठ है। सं. जी. महा. पञ्ज. 162 पर 'द्रिन-लन-दु- मृछोद-र्तेन-ब्र्ग्य-च्चम (उच्चा. डिन-लन-दु-छोद-तेन-ग्य-च्चम= प्रत्युपकार के लिए स्तूप सौ तक)'—पाठ है। सं. जी. इण्डो तिबेटिका—II, पृ. 109 पर 'द्रिन-लन-दु- सोन-शेद-मृछोद-र्तेन-ब्र्ग्य-च्चम (उच्चा. डिन-लन-दु-सोन- शेद-छोद-तेन-ग्य- च्चम=प्रत्युपकार पूर्ण होने के लिए स्तूप सौ तक)' पाठ है, इन सभी पाठ भेदों में मात्र शाब्दिक भिन्नता ही समझनी चाहिए।

स्नेलग्राव ने उपर्युक्त म. जी. में प्रयुक्त 'सङ-शेद' को 'सङ-ग्ज्येस (उच्चा. सङ-जेस)' बनाकर 'Soon' अनुवाद किया है। यद्यपि उन्होंने अपने Textual Note 103/21 में उपर्युक्त सभी विविधताओं को स्पष्ट किया है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh—I. P. 114.

28. 'मृछोन-गङ (उच्चा. छोन-गङ)' अर्थात् अङ्गुल भर, जोकि आठ जौ भर का एक नाप है। समराङ्गण-सूत्रधार में रेणु से लेकर अङ्गुल तथा हस्त तक के नापों का उल्लेख निम्नप्रकार से है—

रेण्वष्टकेन वालाग्रं लिक्षा स्यादष्टभिस्तु तैः।
भवेद् यूकाष्टभिस्ताभिर्यवमध्यं तदष्टकात्।। 4।।
अष्टभिस्सप्तभिः षड्भिरङ्गुलानि यवोदरैः।।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि तच्चतुर्विंशतिः करः ।। 5।

—द्र. सम. सूत्र. अ. 5, पृ. 381.

भारत में प्राचीन नाप की दो पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं। उपर्युक्त श्लोकों में जहाँ 'आठ-आठ के गुणा से होनेवाली नाप की एक पद्धति दर्शायी गई है तो वहीं अभिधर्मकोश में सात-सात के गुणा से होनेवाली नाप जो परमाणु से धनु तक दूसरी पद्धति इस प्रकार है—

…परमाणुरणुस्तथा।। 85।।
लोहाप्शशाविगोच्छिद्ररजोलिक्षास्तदुद्भवा।
यवस्तथाङ्गुलीपर्वज्ञेयं सप्तगुणोत्तरम्।। 86।।
…एतत् परमाण्वादिकं सप्तगुणोत्तरं वेदितव्यम्।

सप्त परमाणवोऽणुः, सप्ताणवो लोहरजः तानि सप्ताब्रजः, तानि सप्त शशरजः, तानि सप्तैऽकरजः, तानि सप्त गोरजः, तानि सप्त वातायनच्छिद्ररजः तानि

सप्तलिक्षाः, तदुद्भवा यूकेत्यर्थः सप्त यूका यवः सप्त यवा अङ्गुलि पर्व। त्रीणि पर्वाण्यङ्गुरीति प्रसिद्धमेवेति नोक्तम्।। 85-86।।

चतुर्विंशतिरंगुल्यो हस्तो हस्तचतुष्ट्यं धनुः।

—द्र. अभि. को. -लोकनिर्देश पृ. 536।

29. यहाँ पर 'कलचगति' पहुँचने का जो उल्लेख है, वह म. जी. पृ. 73 तथा सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 164 पर नहीं है।

30. भोटभाषा में मानवजाँघ की हड्डी द्वारा निर्मित तूती को र्कङग्लिङ (उच्चा. कङ-लिङ) कहा जाता है। यह एक प्रकार का तान्त्रिकवाद्ययन्त्र है। इसका प्रयोग तान्त्रिक कर्मकाण्डों में होता है।

31. सं. जी. पृ. 247 पर जोगी के स्थान में 'लो-कि' पाठ है, किन्तु म. जी. पृ. 73 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 103 पर 'ज़ो-कि' पाठ मिलता है। यही शुद्ध पाठ प्रतीत होता है। क्योंकि जो-कि शब्द 'जोगी या योगी' का भोट उच्चारण है। अतः यहाँ भी लो-कि के स्थान पर 'जो-गी' हिन्दी अनुवाद किया है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 164 पर उक्त शब्द का उल्लेख नहीं है। म.जी. के इसी स्थल में 'जो-गी' को नग्न भी बताया है।

सं. जी. इण्डो तिबेटिका—II, पृ. 109 में योगी से भेंट होने की घटना को स्वप्न में (मूनल-लम-दु) बताया है, जो अन्य में नहीं है।

32. सं. जी. पृ. 247 पर 'लन-गृसुम-बुस्कोर-ते-र्ग्यब-नस' में 'र्ग्यब-नस' का अर्थ मारकर और बजाकर दोनों होता है। पर यहाँ प्रसंग-वश इसका अर्थ 'बजाकर' है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 164 पर स्पष्ट रूप से 'बुस-नस' (=बजाकर) लिखा है, किन्तु म. जी. पृ. 73 पर उक्त शब्द लुप्त है।

33. नवप्रसूता व्याघ्री का मूल भोट पाठ 'स्तग-ग्रुस-म' (उच्चा. तग-डु-म) है, जिसका शब्दार्थ 'दुधारू' व्याघ्री होता है। यहाँ व्याघ्री के सन्दर्भ में 'दुधारू' शब्द ठीक नहीं लगता है। अतः यहाँ हिन्दी अनुवाद में 'दुधारू' के स्थान में 'नवप्रसूता' यह भावानुवाद किया है।

स्नेलग्रोव ने 'स्तग-ग्रुस-म' का अंग्रेजी अनुवाद "A Fully grown tiger" किया है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh—I.P.88.

34. म. जी. पृ. 75 तथा सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 166 पर नगर का नाम क्रमशः 'कलचगति' और 'कलबरि' दिया है।

35. इस स्थल पर कश्मीरी बच्चों ने रत्नभद्र को देखकर उनके परिधान के सन्दर्भ में कहे गये परिहासात्मक वाक्यों में यद्यपि उपलब्ध जीवनियों में एकरूपता नहीं है तथापि उन सब का भाव समान ही है—

(क) म. जी. पृ. 75 तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 104 पर 'लुस-पोइ-छगस-लुगस-सेर-पो= शरीर का पहरावा पीला।'

(ख) सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 166 में 'लुस-क्यि-छ-लुगस=शरीर का वेश'।
(ग) सं. जी पृ. 249 तथा सं. जी. इण्डो तिबेटिका–II, पृ. 110 में 'लुस-पइ-छस-लुगस=शरीर का वेश' है।
स्नेलग्रोव ने उपर्युक्त म. जी. के भोटपाठ 'लुस-पइ-छगस-लुगस-सेर-पो' में प्रयुक्त 'सेर-पो=पीला' को शरीर का वर्ण समझकर पूरे वाक्यांश का अनुवाद "a yellowish coloured body" किया है।
द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I, P. 88

36. म. जी. पृ. 76 पर धूपदानी अर्पण करनेवाले ब्राह्मण का नाम श्रद्धाकर वर्मा दिया है।
37. 'र्कड-म्ग्योगस-क्यि-दुडोस-स्गुब (=जंघाचारिक सिद्धि)'—यह एक तान्त्रिक सिद्धि है। इसकी प्राप्ति होने पर साधक महीनों का मार्ग एक दिन में तय कर लेता है। इसके पादुका सिद्धि, द्रुगः, द्रुतगः आदि अनेक नाम है। द्र. वा. शि. आ. सं. हि. को. पृ. 1106.
38. यहाँ पर रत्नभद्र कश्मीर के जिस नगर की भौगोलिक विशालता का जिक्र कर रहे हैं, सम्भवतः यह नगर म. जी. पृ. 79 में वर्णित 'भीनधार' है, क्योंकि भीनधार नगर में एक योगी से जंघाचारिक सिद्धि प्राप्त करने के बाद ही वे तमलसनति नगर पहुँचते हैं।
39. यहाँ पर जो महापंडित श्रद्धाकर वर्मा का उल्लेख है, वे धूपदानी देनेवाले श्रद्धाकर वर्मा नहीं हैं।
40 सिद्ध नाड़पाद (नरोपा) को परम्परा के लोग क्षत्रिय कुल का मानते हैं, परन्तु राहुल सांकृत्यायन (पुरा. नि. पृ. 121) इन्हें ब्राह्मणकुल का मानते हैं। ये कश्मीर के रहने वाले और प्रसिद्ध नालन्दा महाविहार के उत्तरी द्वार के महापंडित थे और आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान के गुरु भी रहे हैं। बाद में सिद्ध तिल्लीपाद के चरणों में जाकर उन्होंने तान्त्रिक दीक्षा ली और इसी जीवन में परमसिद्धि का लाभ प्राप्त किया। सिद्धि लाभ के पश्चात् वे तन्त्रनय के महान आचार्य रहे। इसके बाद भोटदेशीय कर्ग्युद परम्परा के प्रवर्तक महान लोचावा-'मरपा-छोस-क्यि-ब्लो-ग्रोस' के गुरु हुए। भोट देश में प्रचलित कर्ग्युद-परम्परा की भारतीय परम्परा यहीं से आरम्भ होती है। सिद्ध नाड़पाद का काल 974-1026 ई. है। ये मगध के राजा महिपाल के समकालीन माने जाते हैं।
41. पु-हङस, पु-रङस, पु-हङ तथा स्पु-हङस (देव-थेर-1, पृ. 95) इनमें केवल लिखने के रूप का भेद है।
42. महागुरु ल्ह-ल्दे-बृत्सन 'स्रोङ-ङे' के सुपुत्र और ओद-ल्दे, ब्यङ-छुब-ओद और जिवा-ओद के पिता थे। इन राजाओं की वंशावली में भोट इतिहास ग्रंथों में एकरूपता नहीं है। –द्र. इण्डो-तिबेटिका–11,पृ. 16-21।

43. बोधिसत्त्व ज्ञानप्रभ स्रोड-डे का भिक्षुनाम है। ये जीवन के पूर्वार्ध में गृहस्थ और उत्तरार्ध में प्रव्रजित हुए थे। द्र. देव-थेर-डोन-पो-1, पृ. 299-300 तथा पद-दकर-छोस-व्युड, पृ. 348-350.
44. मृयो-ल्दिङ, मृयो-ग्लिङ तथा थो-ग्लिङ—सभी गुगे प्रान्त में स्थित मृयो-ल्दिङ (उच्चा. थो-दिङ) ही है। इनमें मात्र लिखने के रूप में भेद है।
45. 'मर-युल' और 'मङ-युल' दोनों नाम जम्मू कश्मीर के अन्तर्गत आने वाले लद्दाख क्षेत्र के प्राचीन नाम हैं। इन नामों के सम्बन्ध में विस्तार से जानकारी हेतु द्र. टशि रबग्यस का 'लद्दाख का इतिहास'।
46. महानुवादक रत्नभद्र ने लद्दाख स्थित 'जर-म' नामक स्थान पर जो विहार बनाया था, आज उसके खण्डर ही बचे हैं। इस विहार के निकट अलची का प्राचीन विहार मूलरूप में विद्यमान है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh—I, P.19।
47. रत्नभद्र द्वारा अपनी मां के आयुवर्धन के लिए दुर्गतिपरिशोधन मण्डल के निर्माण के पश्चात् मां की आयु में वृद्धि हुए वर्षों की संख्या उपलब्ध जीवनियों में भिन्न-भिन्न है। म. जी. पृ. 90, स्तोत्र, पृ. 137, सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 175, म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 106 पर अठ्ठारह वर्ष है, तो इण्डो तिबेटिका-11, पृ. 113 में आठ वर्ष है।,इसमें लिपिक का प्रमाद लगता है।
48. यहां पर जो हाथी देने का प्रसंग आया है, वह आवश्यक नहीं कि वास्तविक ही हो, क्योंकि भोटदेश में हाथी नहीं होता है। यह केवल लोचावा के प्रति सम्मान दर्शाया गया है।
49. रत्नभद्र के साथ कश्मीर भेजे गये उपस्थापकों की संख्या में एकरूपता नहीं है। म. जी. पृ. 91, स्तोत्र, पृ. 138 तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 106 में पन्द्रह और सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 114 पर पांच उपस्थापकों का उल्लेख है।
50. सभी उपलब्ध जीवनियों में कश्मीर में अवलोकितेश्वर की प्रतिमा बनाने वाले शिल्पकार का नाम 'भिधक' दिया है किन्तु सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 177 पर उनका नाम 'भेरूक' दिया है। इसमें लिपिक का प्रमाद प्रतीत होता है।
51. खुशी उत्सव के आयोजन में सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 178 पर पांच सौ स्वर्ण औंस (गसेर-स्रङ-ल्ङ-ब्र्ग्य) देने का उल्लेख है। इसे लिपिक का प्रमाद ही माना जाना चाहिए क्योंकि वे घर से आते समय बीस औंस स्वर्ण ही लाये थे।
52. सं. जी. पृ. 261 तथा सं. जी. इण्डो तिबेटिका-II, पृ. 115 पर 'मजदूर' की जगह लामा (ब्ल-म-=गुरु) पाठ है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 178 पर आदमी (मि) तथा म. जी. पृ. 93 पर 'स्ल-प' पाठ है। सम्भवतः लिपिक के प्रमाद से यह भोट संयुक्ताक्षर 'ग्ल' से 'स्ल' हो गया है। म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 106 में 'ग्ल-प' पाठ है और यही पाठ शुद्ध प्रतीत होने के कारण हिन्दी अनुवाद में 'मजदूर' का प्रयोग किया है। मूल में भी लिपिक के प्रमादवश 'ग्ल' के स्थान में 'ब्ल' हो गया लगता

है।

53. शिल्पकारों की संख्या में भी एकरूपता नहीं है। म. जी. पृ. 94, स्तोत्र, पृ. 138 तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 106 पर बत्तीस शिल्पकार है, किन्तु सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 178 पर तैंतीस शिल्पकार हैं।
54. महागुरु ज्ञानप्रभ (ल्ह-ब्ल-म-ये-शेस-ओद) ने प्रव्राजित होने के बाद भी सेना की कमान अपने हाथ में रखी थी। एक बार गर-लोग वालों के साथ युद्ध करते समय वे पकड़े गये और उन्हें गरलोग वालों ने जेल भेज दिया और जेल में ही उनका देहावसान हो गया। द्र. देब-थेर-ङोन-पो पृ. 299-301, W.D. Shakabpa कृत Political History of Tibet-I, PP. 241-246 तथा पद-दकर-छोस-ब्युङ, पृ. 356-361.
गरलोग देश की चर्चा भोट इतिहास में बहुत हुई है, पर यह देश कहाँ है किसी ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। बहुत खोजबीन के बाद पता चला कि यह देश वर्तमान 'गिलगित' प्रदेश है, जो कश्मीर और अफगानिस्तान के बीच में पड़ता है। इसका वास्तविक नाम 'गर-लोग' न होकर 'कर-लोग' है। यह शब्द वहाँ का स्थानीय उच्चारण है।
55. सं. जी. पृ. 262, म. जी. पृ. 96, सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 179, म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 107 तथा सं. जी. इण्डो तिबेटिका-II, पृ. 115 पर उपलब्ध समान भोट पाठ 'युल-छुङ-जि-शु-र्च-गूचिग-तु-लो-ह्ख्युद-ह्खोर-ल-मृदो-मङ-छ-गूसुम। हबुम-छ-बूदुन-ल-सोगस-प' का अनुवाद करते समय स्नेलग्रोव ने 'मृदो-मङ (स) छ-गूसुम' को 'मृदो, मङ-छ, गूसुम तथा 'मङ-छ' में 'छ' को 'ज' मान मृदो. मङ-ज-गूसुम...' ऐसा बनाकर पूरे वाक्यांश का अनुवाद"...three general tea ceremony for reading of the sutras every year to the community in the twenty one places, seven reading of perfection of wisdom in 100,000 Verses and so.." किया है। यह अनुवाद उचित नहीं है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I, P. 92.
56. पिता से सम्बद्ध भाई का मूल भोट पाठ सं. जी. पृ. 263 पर 'फ-स्पुन' एवं 'स्पुन-छ़न'; म. जी. पृ. 96 पर 'फ-स्पो एवं पृ. 97 पर 'फ-स्पुन', सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 179 मूछ़न स्पो एवं 180 पर फ-छ़न, सं. जी. इण्डोतिबेटिका-II, पृ. 115 पर फ-स्पुन एवं स्पुन-छ़न तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 107 पर फ-स्पो एवं फ-स्पुन है। इन सबका अर्थ पिता से सम्बद्ध भाई यानि चचेरा भाई होता है।
57. क्यु-वङ के रदनि में बनाये जानेवाले विहार के लिए प्रयुक्त रूपक में भी उपलब्ध जीवनियों में एकरूपता नहीं है। सं. जी. पृ. 263 तथा सं. जी. इण्डोतिबेटिका II, पृ. 115 पर 'प-रू-चम' (=भिक्षापात्र भर), म. जी. पृ. 98 तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 107 पर 'रि-रब-चम (=सुमेरु भर)' तथा सं. जी. महा. पञ्ज. पृ.

180 पर 'ब्रे-च्रम (=द्रोण-मात्र)'—ये पाठ भेद है।

58. 'ग्यम-शुग' नाम में एकरूपता नहीं है। सं. जी. पृ. 264 तथा सं. जी. इण्डो तिबेटिका-II, पृ.116 पर 'ग्यम-शुर' पाठ है जबकि म. जी. पृ. 98 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 107 पर 'ग्यम-शुग' पाठ है।

59. म. जी. पृ. 98-100 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 107 पर मन-जलमति की तीन बहनों का रत्नभद्र के सामने साक्षात् प्रकट होने का उल्लेख है। मन-जलमति की अन्य बहिनों के नाम—(1) लो-दङ-मा-मन-डोग-मो (2) च्रन-डोग-मो-डो-मुर-मा (3) दुद-डोग-मो-ब्रोग-मुर-मा हैं। इन चारों अमानुषी बहनों को रत्नभद्र ने अपने विभिन्न विहारों की रक्षिकाओं के रूप में नियुक्त किया था। म. जी. में ही मन-जलमति के सिर के सामने के काटे गये बालों को रदनि विहार के नीचे निधि के रूप में दफनाने का संदर्भ है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 182 पर मनजलमति को प्रतिज्ञा में आबद्ध करते समय उसके द्वारा प्राण हृदय अर्पण करने के साथ-साथ 'रत्नों से भरी स्वर्ण परात' (गुसेर-गुज्योड-नोर-बुस-ब्कङ- नस) अर्पण करने का उल्लेख है, जो विहार के नीचे निधि के रूप में रख दी गई थी। 'रत्नों से भरी 'परात' अर्पण करने का यह कथन अन्य जीवनियों में नहीं है।

60. यहाँ पर जो 'ढोल' है वह नृत्य आदि के अवसर पर बजाया जानेवाला ढोल नहीं है। इसे तान्त्रिक कर्मकाण्डों पर बजाया जाता है।

61. व्याम-फैलायी गई दोनों बाहों भर के नाप को व्याम कहते हैं। श्री हेमचन्द्राचार्य के अनुसार न्यग्रोध और व्यायाम भी इसके पर्याय हैं—

व्यामव्यायामन्यग्रोधास्तिर्यग्बाहू प्रसारितौ।

———————————————— ।।264।।—द्र. अभि. चिन्ता. पृ. 149।

राजा भोज विरचित समराङ्गन सूत्रधार में पुरुष तथा व्याम को चौरासी अंगुल का बतलाया गया है—

चतुरुत्तरयाशीत्याव्यामः स्यात् पुरुषस्तथा।

———————————————— ।।45।।*

द्र. सम. सूत्र. अ. 9।

62. सं. जी. महा. पञ्ज. में लुप्त किन्तु अन्य उपलब्ध जीवनियों में समान रूप से आने-वाले इस स्थल के 'वितस्ति' शब्द का प्राचीन भोट पाठ (मु) ख्युद-गङ (वर्तमान मुख्यिद-गङ) को स्नेलग्रोव ने 'खु-गङ (हस्तभर)' मानकर इसका अनुवाद..."a Full cubit" किया है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I, P-94।

नोट— बारह अंगुल का नाप वितस्ति कहलाता है। अभिधानचिन्तामणि में तर्जनी आदि के साथ अंगुष्ठ तक, अंगुलियों को फैलाने पर होनेवाले नाप को निम्न

प्रकार से बताया गया है
प्रादेशिन्यादिभिः सार्धमङ्गुष्ठे वितते सति।
प्रादेशतालगोकर्णवितस्तयो यथा क्रमम्।। 259।।

—द्र. अभि. चिन्ता. पृ. 148।

समराङ्गणसूत्रधार में प्रादेश आदि की नाप अंगुल के आधार पर इस प्रकार दर्शायी है—

———————————————————— ।
प्रादेशो नवभिस्तैः स्याच्छयतालो दशाङ्गुलः ।।42।।
गोकर्ण एकादशभिर्वितस्तिर्द्वादशांगुला।
———————————————————— ।। 43 ।।

—द्र. सम. सूत्र. अ. 9।

63. म. जी. पृ. 100 तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 107 के अनुसार रत्नभद्र ने मन-जलमति की बहन लो-दङ-मा-मन-डोग-मो को जर आदि ख्य-च्रे के विहारों की, चन-डोग-मो-डो-मुर-मा को ग्युलङ् खङ्-मर विहार की तथा दुद-डोग-मो-स्रोग-मुर-मा को सुमनम के विहार की रक्षिका नियुक्त किया।
64. 'बृज्येस चेर (उच्चा. ज्येस-वेर)' नाम विविध रूपों में आया है—म. जी. पृ. 108 तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 108 पर 'ज्येर-प' है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 183 में 'बृज्येङस-वेर' रूप से मिलता है। सं. जी. पृ. 266 तथा सं. जी. इण्डोतिबेटिका-II, पृ. 116 पर 'बृज्येस-वेर' एवं इसी के पृ. 117 पर 'बृशंस-ज्येर' पाठ मिलते हैं।
65. लरि-रत्नभद्र ने स्पीति में स्थित इस 'लरि' नामक गाँव में विहार का निर्माण करवाया था। लेकिन इस समय इस विहार के अवशेष ही मिलते हैं। फ्रेंके ने भी उन अवशेषों को देखा था। द्र. Antiquities of Indian Tibet-I, P. 37।
66. 'र्त-पो (उच्चा. त-पो)' अथवा 'ताबो' गाँव स्पीति में अवस्थित है। इसी गाँव में हिमालय की अजन्ता के नाम से विश्व विख्यात 'ताबो गोन-पा' है। 1909 में फ्रेंके ने इसके दर्शन किये थे। 'ताबो को ही र्त-फो, र्त-सो आदि कहने की परम्परा है। इसके सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए द्र. Antiquities of Indian Tibe-I, PP. 37-43 तथा Indo Tibetica-III, PP. 21-115.
67. ति-रि के स्थान में सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 183 पर 'रि-रि' तथा सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 116 पर 'ति-रि' पाठ भेद मिलते हैं। म. जी. पृ. 108-109 तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 108 पर परिगणित बीस गाँव के नामों में 'ति-रि' का उल्लेख नहीं है।
68. रो-पग गाँव किन्नौर में स्थित है। राष्ट्रीय उच्च मार्ग नं. 22 पर स्थित श्यासो खड्ड से सुन-नम ग्योवोङ होते हुए बस मार्ग से 'रो-पग' पहुँचा जा सकता है। यहाँ

पर रत्नभद्र द्वारा निर्मित एक विहार भी मूलरूप में विद्यमान है।

69. 'होपु-लङ्का' किन्नौर जिले में पड़ता है। किन्नौर के 'पङे (पंगी)' से 'चिने (कल्पा)' तथा इसके आगे 'टोन-नङ्चे' तक के क्षेत्र को होपु या साइराक कहा जाता है। साइराक यानि दस गाँव वाला क्षेत्र। चिने गाँव के आगे टोन-नङ्चे की ओर बढ़ने पर कुछ उत्तरार्ध में एक छोटी बस्ती स्थित है। इस बस्तीवाले क्षेत्र को स्थानीय लोग 'लाङ सारिङ' कहते हैं। सारिङ हिमाचली शब्द 'सेरी' का किन्नौरी रूप है। किन्नौरी बोली में 'सारिङ' खेतों के सामूहिक नाम के लिए आता है। इस 'लाङ-सारिङ में प्रयुक्त 'लाङ' शब्द के सम्बन्ध में यहाँ कोठी गाँव-की देवी चण्डिका के चिरोनिङ यानि बखान की ओर ध्यान दिया जाए तो इसमें देवी, चिने के पास 'लङका' नामक राक्षस (सम्भवतः यहाँ के किसी ठाकुरस/ ठाकुर) को अपने द्वारा मार डालने का जिक्र करती है। हो सकता है यह 'लाङसारिङ' उस लङ्का राक्षस की जगह रही होगी। उसकी जगह होने से पहले इस क्षेत्र को लङ्का सारिङ भी कहते रहे होंगे और यह लङ्का सारिङ कालान्तर में लाङ सारिङ हो गया हो। साथ ही, उस समय लङ्का सारिङ के 'लङ्का' शब्द को इस पूरे क्षेत्र के वर्तमान नाम 'होपु' के साथ जोड़कर पंगी से टोन-नङ्चे तक के पूरे क्षेत्र को 'होपुलङका' कहते होंगे। यही कारण है कि रत्नभद्र की मध्यम तथा संक्षिप्त जीवनियों में इस क्षेत्र का नाम 'होपु' के साथ-साथ होप-लङ्क (होपु-लङ्का) भी आया है।

इस पूरे क्षेत्र में जल की शुरू से ही अधिकता रही है। इस कारण इसका नाम 'होपुलङ्का' कालान्तर में इस क्षेत्र की अपेक्षा कम पानीवाले क्षेत्रों के लिए यह अधिक जल या दरिया का पर्यायवाची शब्द बन गया। यही कारण है कि आज भी असरङ आदि क्षेत्रों के लोग सब्जी आदि में पानी डालते समय सब्जी में जरूरत से ज्यादा पानी डल जाये तो 'हो होपु लङका लत-तो, होपु लङ्का वङरे' (=होपु लङका कर डाला। होपु लङ्का बन गया) यानि सब्जी में ज़रूरत से ज्यादा पानी डालकर सब्जी का दरिया बना डाला या दरिया बन गई, कहते हैं। सन् 1993 में जब इन पंक्तियों का लेखक रत्नभद्र की इसी संक्षिप्त जीवनी का हिन्दी रूपान्तर कर सम्पादन कर रहा था, उस समय उपर्युक्त सूचनाएँ नहीं थी। रत्नभद्र द्वारा जलसर्प पकड़कर क्यु-चङ ले जाने और अधिक जल का पर्यायवाची शब्द के रूप में इस पूरे क्षेत्र का नाम 'होपुलङ्का' था, इसकी लोक भाषिक सूचना नहीं थी। इसलिए लेखक ने किन्नौर के रिदङ (रिब्बा) गाँव में प्रचलित रत्नभद्र द्वारा नाग दमन की जनश्रुति के आधार पर होपु क्षेत्र में पहले रिब्बा गाँव तक के क्षेत्र होने तथा वर्तमान होपु क्षेत्र उस कल्पित बृहद् क्षेत्र का सिमटा रूप होने की सम्भावना व्यक्त की थी, जो सही नहीं थी। इधर होपु क्षेत्र में कल्पा के निकट 'चुङलिङ' के ऊपरी भाग से पहले किसी लामा द्वारा जलसर्प पकड़कर

ले जाने की लोककथा इस क्षेत्र के बुजुर्गों में अब भी प्रचलित है। जलसर्प पकड़कर ले जानेवाले यह लामा महानुवादक रत्नभद्र के अतिरिक्त दूसरे कोई नहीं हो सकते हैं। अतः विद्याभारती-13 अंक के पृष्ठ 37 के फुट नोट संख्या 71 को अशुद्ध मानकर अब इसकी तरह ही समझा जाय।

70. 'हिसाब भी वहीं पूरा हो गया' के मूल भोट पाठ 'ग्रिं-बृज्युग-क्यङ-देर-ज़ोगस-सो' में 'ग्रिं-बृज्युग' वाक्यांश का वर्णविन्यास उपलब्ध जीवनियों में भिन्न-भिन्न रूप में मिलता है—सं. जी. पृ. 266 तथा सं. जी. इण्डो तिबेटिका-II, पृ. 116-117 पर ग्रिं-बृज्युग' पाठ है।
म. जी. पृ. 109 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 108 पर ग्रिंस-हृजुग' पाठ मिलता है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 184 पर 'ग्रिंस-गृज्युग' पाठ है। सभी में व्याकरणिक अशुद्धि है। शुद्ध पाठ 'ग्रिंस-मृजुग' है। वैसे उपर्युक्त सभी पाठों का भावार्थ समान ही है।
उपर्युक्त वाक्यांश का स्नेलग्रोव ने "If you Count them the number will be complete" ऐसा अनुवाद किया है। साथ ही, इस सन्दर्भ में आवश्यक पाद-टिप्पणियाँ भी दी हैं। द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I, P. 95

71. दस धर्मचर्या इस प्रकार हैं—(1) धर्मशास्त्रलेखन (2) पूजन (3) दान (4) श्रवण (5) वाचन (6) उद्ग्रहण (7) प्रकाशन (8) स्वाध्याय (9) चिन्तन और (10) भावना।

72. 'होपु' नाम विविध रूपों में आया है। म. जी. पृ. 110, सं. जी. पृ. 267 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 108 पर 'हो-पु' पाठ है। म. जी. पृ. 109 तथा सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 117 पर 'हो-पु-लङक' मिलता है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 185 पर 'हो-सु' पाठ है। इन पाठ भेदों के कारण स्नेलग्रोव ने म. जी. के अनुवाद में इसे 'होपु-लङक' मानने में कुछ सन्देह भी व्यक्त किया है। (द्र.Cultural Heritage of Ladakh-I, पृ. 95 फु. 38) इन पाठ भेदों के पीछे लिपिक का ही प्रमाद समझना चाहिए। 'होपु' वास्तव में उस क्षेत्र का नाम है। जिसकी चर्चा पाद टिप्पणी 69 में की जा चुकी है।

73. सं. जी. पृ. 267, म. जी. पृ. 110, म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 108 तथा सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 117 पर होपुलङ्का से ले जाये वाले जलसर्पों की संख्या का उल्लेख नहीं है। परन्तु सं. जी. महा. पञ्ज. 185 पर जलसर्पों की संख्या तीन बतलायी गई है। उपर्युक्त जीवनियों में आगे के विवरणों से भी उचित लगने के कारण हिन्दी अनुवाद में सं. जी. महा. पञ्ज. के आधार पर जलसर्पों की संख्या तीन कर दी है।

74. सभी उपलब्ध जीवनियों में 'बूसे-स्ग्रोम (गेंडे की खाल से बनी सन्दूक)' पाठ समान है, किन्तु सं. जी. महा. पञ्ज. में 'गुसेर-स्ग्रोम' (सुवर्ण सन्दूक)

पाठ भेद है।

75. सुमनम का डति—यह नाम भोट मूल में विविध रूपों में आया है। म. जी. पृ. 111; म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 108 पर सुमनम का डति (सुम-नम-ग्यि-ड्रति); सं. जी.पृ. 267; सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 117 में सुमनम का ख्रति (सुम-नम-ग्यि-ख्रति); सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 185 में स्पु-नम का शिला पर्वत (स्पु-नम-ग्यि ब्रग-रि) आया है। इनमें सुमनम का डति पाठ ही शुद्ध है। अतः हमने भी मूल भोट पाठ 'ख्रति' को 'डति' कर दिया है।

सुमनम या सुन्नम यह गाँव किन्नौर में राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर स्थित श्यासो खड्ड से रोपा बस मार्ग पर 9 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। जहां पर जलसर्प छूट कर भागा था। यह जगह किन्नौर के पुराने मार्ग पर पड़ती है जो सुन्नम गांव के पार है। इस जगह को स्थानीय लोग ब्राति कहते हैं।

सुन्नम गांव में रत्नभद्र का एक लघु विहार आज भी मूल रूप में विद्यमान है।

76. 'तुगतङ' जगह किन्नौर के स्पू (पूह) गाँव के नीचे सतलुज नदी के किनारे स्थित है। जलसर्प के भागकर छिपने की इस जगह से आज भी स्वच्छ जल निकलता है।

77. सं. जी. पृ. 268; सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 117 में 'छोस- द्रिल-दुकर-छग' यह पाठ सं. जी. पृ. 125 पर आया है। म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 110 पर भी यह पाठ होना चाहिए था, किन्तु स्नेलग्रोव से सम्भवतः प्रतिलिपि करते समय 'छ-हदि-र्नमस-लो-त्छ-व-छेन-पोइ-मि-रिगस-हदि-र्नम-थर-छे-हब्रिङ-छुङ-ग्सुम-छोस-द्रिल-दुकर' वाक्य छूट गया है। किन्तु उन्होंने इस वाक्यांश का अंग्रेजी अनुवाद किया है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I, P. 98

नोट : 'छोस-द्रिल-दुकर-छग'—इस वाक्यांश का शब्दशः अनुवाद 'धर्मघंटी सूत्रीपत्र' होना चाहिए था पर हमने यहाँ इसका भावानुवाद 'धर्मों का क्रमबद्ध सूत्रीपत्र' किया है।

78. इस स्थल पर 'खाद्य सामग्री लेते थे' का भोट पाठ 'गृदन-छुङ-लेन-नो' है। यही पाठ म. जी. पृ. 112, म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 109, सं. जी. पृ. 269 तथा सं. जी. इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 118 पर समान रूप से मिलता है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 186 पर 'गृदन-छगस =(वहाँ) रहे' पाठ भेद है।

79. उपलब्ध जीवनियों में गुगे में अतिशा से मिलने के अवसर पर रत्नभद्र की आयु सत्तासी (87) वर्ष होने का उल्लेख है, किन्तु देब-थेर-डोन-पो-पृ. 303 पर अतिशा के गुगे पहुँचने का वर्ष भोट पंचाँग के अनुसार जल-पुंस-अश्व (छु-फो-र्त) यानि 1042 ई. है। देब-थेर-डोन-पो-I, पृ. 94 में भू-पुंस-अश्व (स-फो-र्त) यानी 958 ई. में रत्नभद्र के जन्म होने की बात है। इस प्रकार अतिशा से भेंट होते समय रत्नभद्र की आयु पच्चासी (85) वर्ष होनी चाहिए। भोट इतिहासकार W.D

Shakabpa के अनुसार अतिशा के गुगे पहुँचने का वर्ष 'लोह-पुंस-नाग' यानि 1040 ई. है। इसके अनुसार रत्नभद्र की आयु उस समय तिरासी (83) वर्ष होनी चाहिए। द्र. W.D. Shakabpa Political History of Tibet-I P. 249
यहां पर देव-थेर-ङोन-पो को ही प्रामाणिक मानना चाहिए, क्योंकि रत्नभद्र के जीवन की अन्य घटनाओं के काल देव-थेर-ङोन-पो से सही मिलते हैं। टुचि साहब ने भी देव-थेर-ङोन-पो को ही प्रामाणिक माना है। द्र. Indo-Tibetica-II, P. 25.

80. भोट देश में अतिशा के नाम से विख्यात दीपंकर श्रीज्ञान को भोटवासी आदर से जोवो या जोवो-ल्हचिग भी कहते हैं। देव-थेर-ङोन-पो के अनुसार दीपंकर श्रीज्ञान सहोर (भोट उच्चा. ज़होर) (सम्भवतः वर्तमान बंगला देश) के राजा कल्याण श्री (द्गे-वइ-द्पल) और रानी श्री (मति) प्रभावती (द्पल-ग्यि- होद-ज़ेर-चन) के मंझले पुत्र थे। उनके जन्म का नाम चन्द्रगर्भ (ज़्ल-वइ-स्ञिङ-पो) था। उन्होंने बोधगया के मतिविहार के महास्थविर से उनत्तीस (29) वर्ष की आयु में प्रव्रज्या ग्रहण की थी। भोट देश जाने से पूर्व वे विक्रमशिला महाविहार के स्थविर थे। भोट देश में उन्होंने बुद्धशासन की विपुल सेवा की। सन् 1054 में भोट देश में ही उनका देहावसान हो गया। विस्तार के लिए द्र. देव-थेर-ङोन-पो-1 पृ. 297-327, Blue Annals, P. 241-327; रमेश चन्द्र नेगी (अनु. सम्पा.), अतिश विरचिता एकादश ग्रन्थाः की भूमिका, पृ. 73-157; के.उ.ति.शि. संस्थान, सारनाथ, 1992।
81. अतिशा और रत्नभद्र का वार्तालाप, अतिशा की प्रेरणा पर वर्षभर साधना में बैठने की बात बिना भाव में परिवर्तन किये कुछ-कुछ शब्दान्तरों के साथ देव-थेर-ङोन-पो में भी मिलती है। द्र. देव-थेर-ङोन-पो-I, पृ. 249-250 तथा Blue Annals P. 305-306.
82. वंश परम्परा समाप्त होने का जो पाठ मूल भोट सं. जी. पृ. 272 तथा इण्डो-तिबेटिका-II, पृ. 119 पर समान रूप से आया है वही कुछ शब्द तथा स्थलान्तर के साथ म. जी. पृ. 125 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 110 पर 'थर-रबस-छद-पर-ह्ग्युर-रो' (=अन्त में वंश परम्परा समाप्त हो जायेगी) आया है। स्नेलग्रोव ने अनुवाद करते समय 'थर' में प्रयुक्त 'र' को पराक्षर समझकर 'थर' का अनुवाद Salvation करके पूरे वाक्य का अनुवाद (their) line of Salvation Will be cut off किया है। द्र. Cultural Heritage of Ladakh-I, P. 98.

उपर्युक्त 'थर' में प्रयुक्त 'र' सप्तमी विभक्ति का प्रत्यय है और 'थ' शब्द 'थ-म' (=अन्त) का समास रूप है। यह पराक्षर रहित शब्द होने के कारण 'ह्-दङ-मुथह-मेद-र-दङ-रु' सम्भोट सूत्र के अनुसार 'थर' में 'र' सप्तमी विभक्ति का

प्रत्यय है। अतः 'थर' का अनुवाद 'अन्त में' होगा।

83. रत्नभद्र के निर्वाण प्राप्ति के स्थान के नाम में एक रूपता नहीं है। म. जी. पृ. 121 तथा म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 110 पर 'होम-लोइ-छु-मिग-ल्ह-र्जिङ' (=ओमलो का देव तालाब) पाठ है। सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 190 पर 'ल्दि-मइ-छु- ल्तहइ-र्जिङ' पाठ मिलता है। सं. जी. इण्डो तिबेटिका-II, पृ. 120 पर मूल भोट पाठ में एकरूपता है।

84 रत्नभद्र द्वारा खेचर-प्रस्थान करने की जगह के सम्बन्ध में भी एकरूपता नहीं है। म. जी. पृ. 121-122 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 110 पर ख्वचे का 'रि-विङ-गो' पाठ है। सं. जी. महा. पञ्ज पृ. 190 पर 'विङ-गोङ' पाठ मिलता है। सं. जी. इण्डो तिबेटिका P.II, पृ. 120 पर खछे का 'रि-विर-गो' (ख-छेइ-रि-विर-गो) पाठ भेद मिलता है।

देव-थेर-डोन-पो-1 पृ. 96 पर ख्वचे का विङ-गिर (ख्व-चेइ-विङ-गिर) तथा Blue Annals P.69 में भी यही पाठ है।

टुचि साहब भी 'विङ-गिर' को ही रत्नभद्र के खेचर प्रस्थान की जगह स्वीकार करते हैं। द्र. Indo-Tibetica-II, P. 29।

85. ज्ञानश्री कृत उपलब्ध जीवनियों में रत्नभद्र के देहावसान के काल में वर्ष, धातु और लक्षण का उल्लेख नहीं है, किन्तु देव-थेर-डोन-पो में उक्त दोनों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—'द्गुङ-लो-द्गु-ब्चु-र्च-ब्र्ग्यद-प-शिङ-मो-लुग-ल-ख-चे-विङ-गिर-दु-म्य-ङन-लस-ह्दह-बइ-छुल-ब्स्तन-प...' अर्थात् अठानवे (98) वर्ष की आयु में काष्ठ-स्त्री-भेड़ (वर्ष) में निर्वाण को प्राप्त होने का भाव दर्शाया। द्र. देव-थेर-डोन-पो 1, पृ. 96।

उपर्युक्त भोट पंचांग वर्ष सन् 1055 में पड़ता है। द्र Blue Annals P. 69.

टुचि साहब ने भी 1055 ई. को रत्नभद्र का देहावसान का वर्ष माना है। द्र इण्डो तिबेटिका-II, P. 25.

86. रत्नभद्र के खेचर प्रस्थान के बारे में भिन्न-भिन्न मान्यताएं है। म. जी. पृ. 122 तथा म. जी. स्नेलग्रोव पृ. 110 पर पु-ह्रङस में ओमलो की गुफा (पु-ह्रङस-क्यि-होम-लोइ-ब्रग-फुग), शिङ-वङ के 'यङ-गुर' की गुफा (शिङ- वङ- गि-ग्यङ-स्गुर-ग्यि-फुग), खचे गोखर के रिविङ-गो (ख-चे-गो-खर- ग्यि-रि-विङ-गो) पाठ है।

सं. जी. महा. पञ्ज. पृ. 191 पर पु-ह्रङस के डोमिचि की गुफा (पु-ह्रङस-क्यि-ल्डो-मि-चिइ-ब्रग-फुग), शि-वङ-यङ-क्युर (शि-वङ-गयङ-स्कुर), खो-स-चे-गोङ (खो-स-र्चे-गोङ), खर-चे-चि-गोङ (मूखर-र्चे-चि-गोङ) पाठ है।

सं. जी. इण्डो तिबेटिका-II, पृ. 120 पर पु-स्र (ह) ङस की ल्ह-मि के च-से गुफा (पु-स्रङस-क्यि-ल्ह-मि-यि-च-से-ब्रग-फुग); शिवर-यङ-स्कुर-फुब (ग) (शि-वर- यङ-स्कुर-फुब (ग); ख-छे गोखर के रेविङ-गो (खे-छे-गो-खर-

ग्यि-रे-विड-गो) पाठ है।

पुण्डरीक माला में च-ये-डग (च-ये-ब्रग); यड-स्कुर की गुफा (गुयड-स्कुर-फुग), गोखर का रिविर-गो (गो-खर-रि-विर-गो) पाठ है। द्र. पुण्ड. मा. पृ. 44।

नोट : सम्भवतः रत्नभद्र ने उपर्युक्त अलग-अलग स्थानों से अपने खेचर प्रस्थान का भाव साधारण लोगों के प्रति दिखाया हो।

87 मूल भोट पाठ इस स्थल पर 'शि-द्रुह-म-ब्ल-सु-स्तव। वाक्य उल्लिखित है। परन्तु इसका कोई सम्बद्ध अर्थ नहीं लगता है। द्र. सं. जी. पृ. 277।

88. ज्ञानश्री के गांव का नाम उपलब्ध जीवनियों में विविध रूपों में प्राप्त होता है। पुण्ड. मा. पृ. 49; सं. जी. महा. पञ्ज, पृ. 194 तथा देव-थेर-डोन-पो-I. पृ. 94 पर 'ठि-थड' (ख्रि-थड) है। म. जी. पृ. 127; म. जी. स्नेलग्रोव, पृ. 111 तथा सं. जी. पृ. 277 पर 'ख्यि-थड' (ख्यि-थड) उल्लिखित है। सभी उपलब्ध स्रोतों में उपर्युक्त गाँव को गुगे के अन्तर्गत माना गया है।

# सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


## दोर्जे छेतन द्वारा संकलित एवं प्रकाशित

I. Collected Biographical Material about Lochen-Rin-chen bzan.-po and his Subsequent re-embodiments [Delhi : Laxmi Printing Works, 1977] :—

1. पुण्ड. मा.=छोस-वड-डगस-पा द्वारा रचित 'गङ-चन-गि- स्कद-जिस-प्र- वा-थमस-चद-कि-चुग-गि-ग्यन-लो- छेन-थमस-चद-ख्येन-पा-रिन-छेन- ज़ड-पोइ-नम-थर-अन-डगस-पुण्डरीक-इ-ठेड-वा (पुण्डरीक) शीर्षक से पृ. 19-45।
2. म. जी. = ज्ञानश्री द्वारा रचित मध्यम जीवनी शीर्षक पृष्ठ लुप्त 54-128।
3. स्तोत्र = लो-डोस-दोन-योद द्वारा रचित 'लोच्चाव-स्तोद-पा शीर्षक से पृ. 125-145।
4. सं. जी. महा. पञ्ज. = संक्षिप्त जीवनी महाकाल पञ्जर धर्म पालक देव के इतिहास से उद्धृत 'जिग-तेन-मिग-ग्युर-लोछेन-रिन-छेन-ज़ड-पोइ-नमथर-दुस-पा शीर्षक से पृ. 147-229
5. सं. जी. = ज्ञानश्री द्वारा रचित संक्षिप्त जीवनी 'लामा-लोचावा-छेन-पोइ-नमथर-डिमा-मेद-पा-शेल-गि-ठेड-वा' शीर्षक से 230-277।

II David L. Snellgrove and Tadeusz Skorupski द्वारा रचित The Cultural Heritage of Ladakh-I.N. Delhi : Vikas Publishing House

6. म.जी. स्नेलग्रोव = ज्ञानश्री द्वारा रचित मध्यम जीवनी David L. Snellgrove, द्वारा सम्पादित 'जड-छुब-सेमस-पा-लोच्चावा-रिनछेन-ज़ड-पोइ-ठुडस- रबस-काचद-डोन-मा-नमथर-शेल-टेड- लु-गु-ग्युद-' शीर्षक से पृ. 101-111।

III Giuseppe, Tucci द्वारा रचित लोकेश चन्द्र द्वारा अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ सम्पादित, Indo-Tibetica-II [N. Delhi : Aditya Prakashan, 1988] :—

7. सं. जी. इण्डो-तिबेटिका=ज्ञानश्री द्वारा रचित IndoTibetica-II में प्रकाशित 'लामा लोच्चावा-छेन-पोइ-नम-पर-थर-पा डिमा-मेद-पा-शेल-गि-ठेड-वा' शीर्षक से पृ. 103-121।
8. इण्डो-तिबेटिका III-I = Giuseppe Tucci द्वारा रचित लोकेश चन्द्र द्वारा अंग्रेजी अनुवाद के साथ सम्पादित। वही।

9. देव-थेर-डोन-पो-I = गोस-लो-जोन-नु-पल द्वारा रचित (सिठोन-मि-रिगस-पे-दुन-खड से प्रकाशित, 1984।
10. Blue Annals : = देव-थेर-डोन-पो का George N. Roerich द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित संस्करण (Delhi : MotiLal Banarsidass, 1976)
11. पुरा. नि=पुरातत्त्व निबन्धावली : राहुल सांकृत्यायन द्वारा रचित द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद : किताब महल, 1958।
12. अभि. को=वसुबन्धु द्वारा रचित अभिधर्म कोश, वाराणसी : बौद्ध भारती, 1971।
13. अभि. चिन्ता.=श्री हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित अभिधान चिन्तामणि, (वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन)।
14. सम. सूत्र = राजा भोज कृत समराङ्गनसूत्रधार, बड़ौदा : ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, 1966।
15. अतिश विरचिता एकादश ग्रन्थाः रमेश चन्द्र नेगी द्वारा सम्पादित, सारनाथ वाराणसी : केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान, 1992।
16. लद्दाख का इतिहास, टशि रबग्यस द्वारा रचित Published by C. Namgyal & Tsewang Taru, Leh-Ladakh, 1984.
17. Political History of Tibet-I, written by W.D. Shakabpa Published by T. Tsepal Taikhang, Delhi, 1976.
18. Antiquities of Indian Tibet, written by A. H. Francke.
19. वृहद हिंदी शब्दकोश, वाराणसी : ज्ञान मण्डल लिमिटेड, 1984।
20. वामन शिवराम आप्टे संस्कृत हिंदी कोश, वाराणसी, मोतीलाल-बनारसी दास।
21. पदकर छोस-ब्युङ, दिल्ली संस्करण, 1975।
22. विद्याभारती-13, छोस खोर लिङ बौद्ध सेवा संघ, किन्नौर हिमाचल प्रदेश, 1993।
23. पश्चिमोत्तर हिमालय के आरण्यक—भेड़पालक : किन्नौर के सन्दर्भ में : (सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन); विद्यासागर नेगी द्वारा रचित केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2007।

## ग्रन्थगत सांकेतिक विवरण

अ. = अध्याय
अनु. = अनुवाद
उच्चा. = उच्चारण
द्र. = द्रष्टव्य
प्र. = प्रकाशक
पृ. = पृष्ठ
फु. = फुटनोट
टुचि = Giuseppe Tucci
वा.शि.आ. सं. को. = वामन शिवराम आप्टे संस्कृत कोश
फ्रैंके = A.H. Francke
स्नेलग्रोव = David L. Snellgrove
सं. = संस्करण
सम्पा. = सम्पादक
स्था. = स्थानीय
वि. भा. = विद्याभारती
हि. प्र. = हिमाचल प्रदेश
F. = Foot Note
P. = Page
PP = Pages more than none